जनवरी-मार्च : 2025 वर्ष 31, अंक : 122

January-March : 2025 ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

ISSN 0976-0024
9 770976 002001

PEER REVIEWED REFEREED JOURNAL

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव
जगदीश चंद चौहान

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-31/2025

विधि भारती परिषद्
बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

PEER REVIEWED REFEREED JOURNAL

'महिला विधि भारती' पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

Website : www.vidhibharatiparishad.in

वर्ष 31, अंक : 122, (जनवरी-मार्च, 2025)

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना **संपादक :** डॉ. उषा देव, जगदीश चंद चौहान

बोर्ड ऑफ रेफरीज़ एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ़ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ़ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. डॉ. सुरेंद्र यादव : निदेशक, स्केल विधि महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. न्यायमूर्ति मंजू गोयल (उपाध्यक्ष)
4. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
5. रेनू (कोषाध्यक्ष)
6. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
7. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
8. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
9. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
10. डॉ. संजीव कुमार (सदस्य)
11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
14. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
15. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)
16. डॉ. उषा देव (सदस्य)

शुल्क दर

इस विशेषांक का मूल्य 250/-- रुपए

वार्षिक शुल्क 800/-- रुपए — संस्थागत वार्षिक शुल्क 800/-- रुपए

आजीवन शुल्क 6,000/-- रुपए — संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क 100/- रुपए

धर्मेन्द्र प्रधान
ଧର୍ମେନ୍ଦ୍ର ପ୍ରଧାନ
Dharmendra Pradhan

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

शिक्षा मंत्री
भारत सरकार
Minister of Education
Government of India

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि **विधि भारती परिषद, दिल्ली** द्वारा प्रकाशित 'महिला विधि भारती पत्रिका' अपने 30वें वर्ष में प्रवेश करने व भारतीय लोकतंत्र के 75 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में "भारतीय लोकतंत्र के पचहत्तर वर्ष" विषय पर विशेषांक प्रकाशित करने जा रही है।

विधि भारती परिषद अपने स्थापना वर्ष 1993 से लेकर अभी तक महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों में अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को लेकर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से जागृत करने का कार्य कर रही है। परिषद द्वारा इन उद्देश्यों को और वृहद रूप से पूरा करने हेतु वर्ष 1994 में महिला विधि भारती त्रैमासिक पत्रिका का प्रारंभ एक सराहनीय प्रयास है। अपने प्रकाशन की शुरुआत से लेकर विगत 29 वर्षों से यह पत्रिका महिलाओं और समाज के अन्य वंचित वर्गों के बीच जागरूकता पैदा कर निश्चय ही समाज की प्रगतिशीलता में अपना बहुमूल्य योगदान दे रही है। पत्रिका के विशेषांक के निर्धारित विषय पर देशभर के मूर्धन्य विद्वानों के प्रकाशित आलेख, निश्चय ही समाज में महिलाओं और कमजोर वर्गों के प्रति जागरूकता लाने एवं संवेदनशीलता के विकास में प्रेरक साबित होंगे। मुझे आशा है कि यह पत्रिका अपने प्रगतिशील उद्देश्यों को लेकर और आगे बढ़ेगी तथा समाज में सकारात्मक परिवर्तन की अग्रदूत बनेगी।

मैं विधि भारती परिषद द्वारा प्रकाशित 'महिला विधि भारती पत्रिका' के 120वें विशेषांक के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन हेतु शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(धर्मेन्द्र प्रधान)

सबको शिक्षा, अच्छी शिक्षा

MOE - Room No. 301, 'C' Wing, 3rd Floor, Shastri Bhavan, New Delhi-110 001, Phone : 91-11-23782387, Fax : 91-11-23382365
E-mail : minister.sm@gov.in

प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी
PROF. SUNIL BABURAO KULKARNI
निदेशक
DIRECTOR

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
CENTRAL HINDI DIRECTORATE
शिक्षा मंत्रालय
MINISTRY OF EDUCATION
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

D.O. No.1-1/2024-25/Director

दिनांक – 14/11/2024

शुभकामना संदेश

शिक्षा कभी भी एकांगी नहीं होती। जीवन के प्रवाह में हम जो कुछ भी सीखते हैं ,इसका संबंध बहुविध होता है। यही कारण है कि नई शिक्षा नीति में अंतर अनुशासनात्मक तरीके से सीखने पर विशेष जोर दिया गया है। इस क्रम में उन रुचियों,कौशलों,क्षमताओं का भी विकास होता है जो सुप्त अवस्था में किसी कोने में पड़ी होती हैं। उचित प्रोत्साहन पाकर ये प्रतिभाएँ निखरकर सामने आती हैं। विधि एक ऐसा ही विषय है जिसका सीधा संबंध हमारे मानवाधिकारों की रक्षा से है। इस विषय पर केंद्रित विधि भारती परिषद से प्रकाशित होने वाली 'महिला विधि भारती' पत्रिका का भी उद्देश्य यही है। यह पत्रिका देश की जनता विशेषकर महिलाओं एवं कमजोर वर्गों को उनके कर्तव्यों,अधिकारों तथा कानूनों के बारे में सचेत करने के क्रम में बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।आज जब केंद्र की लोककल्याणकारी योजनाओं का लाभ जन-जन तक पहुँच रहा है तो यह भी आवश्यक है कि लाभार्थियों के साथ किसी तरह का कोई अन्याय न हो। ऐसे में यह आवश्यक है कि उन्हें कानूनी सहायता भी उपलब्ध करवाई जाए। इस दृष्टि से इस पत्रिका की महत्ता और बढ़ जाती है। सही मायने में यह पत्रिका संवैधानिक मूल्यों की संवाहक और रक्षक है। आज इस तरह के पत्रिकाओं का प्रकाशन बहुत जरूरी है। मुझे इस पत्रिका के प्रकाशन को लेकर बहुत संतोष है। पत्रिका के प्रकाशकों को मेरी शुभकामनाएँ।

14.11.24

(प्रो.सुनील बाबुराव कुळकर्णी)
निदेशक

पश्चिमी खंड-7, रामकृष्ण पुरम्, नई दिल्ली-110066 | WEST BLOCK-VII, RAMA KRISHNA PURAM, NEW DELHI-110066
011-20862475, 20862356 www.chd.education.gov.in dirchd-mhrd@gov.in sunilkulkarni38@gmail.com

अंक 122 में

1.	सद्‌भावना संदेश	-- 3
3.	**संपादकीय**	-- 9
3.	एक देश, एक चुनाव : एक विश्लेषण / **जगदीश चंद चौहान**	-- 14
4.	जब भारत बनाम इंडिया मसला सुलझा / **संतोष बंसल**	-- 18
5.	डीपफेक तकनीक का साइबर सुरक्षा में ख़तरा : महिलाओं के लिए इसके निहितार्थ और निवारण की रणनीतियाँ / **नेहा प्रजापति**	-- 22
6.	नेक्रोफीलिया : मानसिक रोग अथवा अपराध / **सन्तोष खन्ना**	-- 31
7.	मासिक धर्म अवशोषक उत्पादों का पर्यावरणीय प्रभाव / **डॉ. भूमिका शर्मा एवं सुश्री अनुरिता यादव**	-- 37
8.	साइबर अपराध का सामाजिक प्रभाव / **डॉ. नीमा कमर एवं नसीमुद्दीन खान**	-- 44
9.	शिक्षा के अधिकार अधिनियम का क्रियान्वयन : एक अध्ययन / **प्रोफेसर (डॉ.) प्यारेलाल आदिले**	-- 50
10.	भारत में अपराधों के लिए दोषसिद्ध के संबंध में संरक्षण : क्या और क्यों? / **प्रो. देवदत्त शर्मा**	-- 65
11.	विधि भारती परिषद् की अंतरराष्ट्रीय काव्य संगोष्ठी / **डॉ. शकुंतला कालरा**	-- 71
12.	वैश्विक और भारतीय संविधान के संदर्भ में समानता का अधिकार / **रमेश चन्द**	-- 73
13.	Rights Discourse of LGBTQIA in India through Lens of Western Philosophy / **Dr. Jyoti Panchal Mistri and Aadarsh Singh**	-- 85
14.	Digital Literacy and Women : Cyber Education / **Dr. Rahisha Tarannum**	-- 91
15.	Child Labour in India : Challenges and Prospects for Eradication / **Asheesh Yadav**	-- 94

लेखक मंडल

जगदीश चंद चौहान : लोक सभा सचिवालय से सेवा-निवृत्त अधिकारी।

संतोष बंसल : A1/7 मियाँवाली नगर, पश्चिम विहार, दिल्ली-110087
मोबाइल : 8860022613

नेहा प्रजापति : सहायक प्रोफेसर, चमेली देवी इंस्टीट्यूट ऑफ़ लॉ, इंदौर
ई-मेल : nehuPrajapati9@Gmail-com, **मोबाइल :** 6261374887

सन्तोष खन्ना : संपादक, विधि भारती परिषद

डॉ. भूमिका शर्मा : सहायक प्रोफेसर, शारदा स्कूल ऑफ़ लॉ, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा

सुश्री अनुरिता यादव : पीएचडी रिसर्च स्कॉलर, शारदा स्कूल ऑफ़ लॉ, शारदा यूनिवर्सिटी, ग्रेटर नोएडा

डॉ नीमा कमर : सहायक प्राध्यापक (विधिक अध्ययन विभाग), संत गहीरा गुरु विश्वविद्याय अम्बिकापुर, सुरगुजा

नसीमुद्दीन खान : सहायक प्राध्यापक (विधिक अध्ययन विभाग), संत गहीरा गुरु विश्वविद्याय अम्बिकापुर, सुरगुजा

प्रोफेसर (डॉ.) प्यारेलाल आदिले : प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, जे.बी. डी.कला एवं विज्ञान महाविद्यालय कटघोरा, छत्तीसगढ़ (भारत)

प्रो. देवदत्त शर्मा : सेवा-निवृत्त, एसोसिएट प्रोफेसर (विधि), **निवास :** सी-469/एफ, एम. आई.जी. डुप्लेक्स, इंदिरा नगर, लखनऊ, पतांक (पिन)-226016, **मोबाइल :** 9236003140

डॉ. शकुंतला कालरा : ....

रमेश चन्द : 1116, सेक्टर 9-ए, गुरुग्राम-122001, **मोबाइल :** 9711011034

Dr. Jyoti Panchal Mistri : Associate Professor, ILLMS. SUI

Aadarsh Singh : LLM–I SEM

Dr. Rahisha Tarannum : Principal of Vidhya Peeth Institute of Law, Bhopal Madhya Pradesh
E-mail : qrahisha@gmail.com, **Mobile :** 9425660287

Asheesh Yadav : Research Scholar, Department of Law, School of Legal Studies, Central University of Punjab, Bathinda-151401

संपादकीय

वर्ष 2025 में दिल्ली के चुनावों के समय हमारे घर में काम करने वाले एक व्यक्ति से मैंने यूँ ही पूछ लिया कि तुम लोग इस बार किसको वोट दोगे? उसने कहा कि हम केजरीवाल को वोट देंगे। मैंने कहा कि यह जानते हुए भी कि केजरीवाल शराब घोटाले में कई महीने जेल में रह कर आ चुका है तो भी आप उसे ही वोट दोगे। उसने जवाब दिया कि वह तो ठीक है पर उनकी सरकार आएगी तो पहले की ही तरह बिजली पानी का बिल नहीं देना होगा और अब वे महिलाओं के ख़ाते में प्रति माह रुपए 2100 भी देंगे।

बात यहीं ख़त्म हो गई। चुनावों के बाद उसने बताया कि उसने प्रधानमंत्री मोदी को वोट दिया है। मैंने पूछा कि ऐसे कैसे हुआ तुम तो केजरीवाल को वोट देने वाले थे। उसने कहा कि प्रधानमंत्री मोदी जी ने अपने एक प्रचार भाषण में कहा था कि अगर बीजेपी की सरकार बनी तो वह सभी सुविधाएँ जारी रहेगी जो केजरीवाल सरकार के काल में हैं और साथ ही महिलाओं के ख़ाते में 2500 रुपए भी डाले जाएँगे, इसलिए हमने कमल को वोट दिया है।

इस एक उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि चुनाव में रेवड़ी कल्चर का कितना महत्त्व बढ़ गया है। हालाँकि वर्ष 2022 में इस रेवड़ी कल्चर की आलोचना करते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा था कि यह रेवड़ी कल्चर देश के लोकतंत्र के लिए बहुत ही नुक़सानदेह है। इससे देश के ख़जाने पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। जो पैसा देश के विकास में लगना चाहिए वह लोगों में मुफ़्त में बाँट देने से विकास तो अवरुद्ध होता ही है उसमें लोगों की मानसिकता भी प्रभावित होती है लोग मेहनत का महत्त्व समझना भूल जाते हैं।

प्रधानमंत्री मोदी जी ने यह सही कहा था कि जब बिना काम के पैसा और सुविधाएँ मिलने लगती हैं तो कौन मेहनत करना चाहेगा? मुफ़्त संस्कृति को बढ़ावा भिखारी संस्कृति को बढ़ावा देना है और लोगों में कामचोर होने की प्रवृत्ति को पनपने देना है। किंतु वर्तमान राजनीतिक जगत् में रेवाड़ी कल्चर पर लगाम लगाने के बजाय उसमें अप्रत्याशित वृद्धि होती जा रही है। राजनीतिक दलों में यह होड़ लग गई है कि कौन सबसे ज़्यादा मुफ़्त की सुविधाएँ देगा।

हमने ऊपर के उदाहरण से देखा कि इन फ्रीबीज से भी लोग किस हद तक प्रभावित होते हैं। वह ऐसे दल को वोट नहीं देना चाहते जो वास्तव में ईमानदारी से देश में विकास करना चाहते हैं बल्कि ऐसे दल के प्रत्याशियों को चुनते हैं जिनसे उन्हें अधिकाधिक मुफ़्त सुविधाओं के मिलने की उम्मीद होती है। हमारे सामने ऐसे कई उदाहरण है जहाँ अधिकाधिक फ्रीबीज के

आधार पर राजनीतिक दलों को चुना गया है। वास्तव में फ्रीबीज कल्चर का दक्षिणी राज्यों से आरंभ हुआ था और धीरे-धीरे इस संस्कृति ने पूरे देश को अपने चंगुल में फाँस लिया है। कर्नाटक में कांग्रेस ने फ्रीबीज का बढ़ा-चढ़ा कर वायदा किया था और वहाँ उस दल की सरकार बन गई। यही हाल हिमाचल प्रदेश का रहा। हिमाचल में तो फ्रीबीज के चक्कर में वहाँ का ख़जाना ख़ाली हो गया था यहाँ तक कि वहाँ कर्मचारियों को वेतन देने के लिए पैसे नहीं बचे थे। कुछ ऐसे ही स्थिति कर्नाटक में भी मानी जा रही है।

सबसे पहला प्रश्न तो यहीं उठता है कि जब प्रधानमंत्री मोदी जी ने रेवड़ी कल्चर की स्वयं आलोचना की थी तो उन्होंने दिल्ली चुनाव के समय वहीं सब वायदे क्यों कर दिए जिन वायदों के आधार पर केजरीवाल दस वर्षों से अधिक समय तक दिल्ली की सत्ता में काबिज रहा? इसका जवाब भी प्रधानमंत्री मोदी जी ने दिया था कि केजरीवाल यह दुष्प्रचार कर रहा है कि अगर भारतीय जनता पार्टी चुनाव जीत गई तो वह वे सभी सुविधाएँ बंद कर देगी जो केजरीवाल सरकार ने दे रखी हैं। प्रधानमंत्री जी ने बताया कि वे सभी सुविधाएँ जारी रखी जाएगी,वह बंद नहीं की जा सकती, बल्कि उन्होंने महिलाओं को 2500 रुपए प्रति माह देने का भी वायदा किया।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि यदि कोई राजनीतिक पार्टी वास्तव में देश का विकास भी कर रही है फिर भी रेवड़ी कल्चर इतना लुभावना हो जाता है कि वर्तमान में शायद रेवड़ी कल्चर से पूरी तरह बचा नहीं जा सकता और केजरीवाल सरकार रुपी आपदा से मुक्ति पाने के लिए इस कल्चर को अपनाना हर दल की मजबूरी हो जाती है।

दिल्ली में बीजेपी की सरकार बनने के बाद दिल्ली की महिलाओं को महिला समृद्धि योजना के अंतर्गत 2500 रुपए प्रति माह दिए जाएँगे। उसके लिए कुछ तय प्रतिमानों के तहत यह योजना लागू की जा रही है। वैसे भी भारतीय जनता पार्टी की केंद्र और राज्य सरकारों ने समाज कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ चला रखी हैं। उसी तर्ज पर महिला समृद्धि योजना के तहत ग़रीब और वंचित वर्ग की महिलाओं को यह सहायता मिलेगी। हालाँकि आम आदमी पार्टी और कांग्रेस इस बात की बीजेपी की आलोचना भी कर रहा है कि जैसे भारतीय जनता पार्टी महिला समृद्धि योजना की बात कर रही है उससे तो दिल्ली की दस प्रतिशत महिलाओं को भी इस योजना का लाभ नहीं मिलेगा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि अधिकांश राजनीतिक दल केवल जरुरतमंदों की सहायता नहीं करना चाहते बल्कि उनकी मंशा ज़्यादा से ज़्यादा लोगों में फ्रीबीज बांट कर उनका वोट ख़रीदना है जोकि लोकतंत्र पर सीधा सीधा कुठाराघात है।

भारत के संविधान के अध्याय चार में राज्य नीति निर्देशक तत्त्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 39 में राज्य को कल्याणकारी बनाने के लिए प्रावधान किए गए हैं यथा सभी को जीवनयापन के पर्याप्त साधन उपलब्ध करना, कमज़ोर समूहों के अधिकारों की सुरक्षा करना, महिलाओं के साथ साथ सभी लोगों को समान कार्य के लिए समान वेतन देना आदि। सरकार इसी प्रावधान के तहत अनेक कल्याणकारी योजनाएँ बना कर लागू कर रही है।

अब सब से बड़ा प्रश्न यही है कि कौन-सी योजनाएँ समाज कल्याण के अंतर्गत आती

हैं और कौन-सी चीज़ें फ्रीबीज मानी जाती हैं। फ्रीबीज की स्पष्ट परिभाषा किया जाना बहुत ज़रूरी है क्योंकि यह जागृति भी जनता में आ रही है कि रेवड़ी कल्चर राष्ट्र की सेहत के लिए अच्छा नहीं है और इसे बंद होना चाहिए क्योंकि फ्रीबीज को अधिकांश लोग मतदाता को एक प्रकार की रिश्वत के समान मानते हैं।

हालाँकि फ्रीबीज का मामला 2013 में उच्चतम न्यायालय में निर्णीत हो चुका है और उस मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार मतदाताओं को फ्रीबीज दिया जाना चुनाव क़ानून के अंतर्गत भ्रष्टाचार आचरण नहीं माना था। इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं। सुब्रमण्यम बालाजी बनाम तमिलनाडु राज्य (2013) के मामले में 6 जुलाई, 2013 को उच्चतम न्यायालय ने अपना निर्णय दिया था। वास्तव में 2006 में तमिलनाडु में चुनाव के समय डीएमके दल ने जनता से प्रत्येक परिवार को रंगीन टी.वी. देने का वादा किया था और चुनाव के बाद हर परिवार में रंगीन टी.वी. बाँटे गए थे। अगले चुनाव वर्ष 2011 में भी अन्ना डीएमके ने भी डीएमके की भाँति फ्रीबीज देने का वादा किया। आरंभ से ही फ्रीबीज का विरोध होने लगा था। तमिलनाडु निवासी सुब्रमण्यम बालाजी ने वर्ष 2006 से फ्रीबीज का विरोध करना शुरू कर दिया था और विरोध का यह मामला तमिलनाडु के उच्च न्यायालय से होता हुआ उच्चतम न्यायालय में पहुँचा था। बालाजी ने फ्रीबीज की योजनाओं को चुनौती देते हुए कहा था कि इस प्रकार से मतदाताओं को ग़ैर-ज़रूरी वस्तुओं के उपहार देना जन-प्रतिनिधि क़ानून की धारा 123 के अंतर्गत चुनावी रिश्वत देने के समान है। इसी मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि चुनाव घोषणा-पत्र में इस प्रकार के वायदे चुनाव क़ानून के अंतर्गत भ्रष्टाचार आचरण नहीं है। न्यायालय ने कहा कि ऐसा कोई क़ानून नहीं है जो सीधे तौर पर चुनाव घोषणा-पत्र की विषय-वस्तु को नियंत्रित करता हो, और उसने भारत के निर्वाचन आयोग को सभी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के परामर्श से इसके लिए दिशा-निर्देश तैयार करने का निर्देश दिया। यह भी कहा गया कि जिन आर्थिक नीतियों या विकास मॉडलों को पार्टियाँ अपनाने की योजना बनाती हैं, उन्हें बहुत स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए और प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, पार्टियों को ऐसी नीतियों के अर्थशास्त्र और व्यय के बारे में उचित समझ होनी चाहिए और उसके बारे में सूचना प्रदान भी करनी चाहिए)।

तब उच्चतम न्यायालय ने फैसला देते हुए यह भी कहा कि भारत एक बड़ा देश है और यहाँ अभी भी बड़ी संख्या में लोग ग़रीबी रेखा से नीचे रहते हैं। देश की विकास योजना में सभी लोगों को शामिल करना भी महत्त्वपूर्ण है। मुफ़्त सुविधाओं या सब्सिडी की विवेकपूर्ण और समझदारीपूर्ण पेशकश, जिन्हें राज्यों के बजट में आसानी से समायोजित किया जा सकता है, से ज़्यादा नुक़सान नहीं होता है और इसका लाभ उठाया जा सकता है। सब्सिडी और मुफ़्त सुविधाओं में अंतर करना होगा और आर्थिक दृष्टि से मुफ़्त सुविधाओं के प्रभावों को समझने और इसे करदाताओं के पैसे से जोड़ने की आवश्यकता है। सब्सिडी और मुफ़्त सुविधाओं के बीच अंतर करना भी आवश्यक है, क्योंकि सब्सिडी न्यायोचित और विशेष रूप से लक्षित लाभ हैं, जो माँगों

से उत्पन्न होते हैं। लोगों में जागरूकता पैदा कर उन्हें यह एहसास होना चाहिए कि वे मुफ़्त में अपने वोट बेचकर कितनी बड़ी ग़लती कर रहे हैं। अगर वे इसका विरोध नहीं करेंगे, तो वे अच्छे नेताओं की उम्मीद नहीं कर सकते।

आयोग ने निर्वाचन संबंधी घोषणा-पत्रों के लिए दिशा-निर्देशों के प्रतिपादन के बारे में निर्वाचन सदन, नई दिल्ली में राष्ट्रीय एवं राज्य मान्यता प्राप्त दलों के प्रतिनिधियों के साथ 12 अगस्त, 2013 को बैठक आयोजित की। सभी छह राष्ट्रीय दलों ने बैठक में भाग लिया जबकि 45 आमंत्रित राज्य दलों में से 24 ने भाग लिया। यह बैठक माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय, जिसमें आयोग को मान्यता प्राप्त राजनैतिक दलों के परामर्श से निर्वाचन संबंधी घोषणा-पत्रों के बारे में दिशा-निर्देश, जिन्हें आदर्श आचार संहिता के भाग के रूप में सम्मिलित किया जाना होगा, तैयार करने का निदेश दिया गया था

चुनाव आयोग ने चुनाव घोषणा-पत्र संबंधी कुछ दिशा-निर्देश अवश्य जारी किए थे किन्तु रेवड़ी कल्चर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, इसलिए रेवड़ी कल्चर पर अंकुश लगाने के लिए मामला पुनः उच्चतम न्यायालय में विचाराधीन है। जब वर्ष 2022 में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने रेवड़ी कल्चर को देश के लिए हानिकारक बता कर उसकी आलोचना की तो उच्चतम न्यायालय के प्रतिष्ठित वकील आश्विन उपाध्याय ने उच्चतम न्यायालय में रेवड़ी कल्चर के विरुद्ध एक रिट याचिका दायर कर दी। वह रिट याचिका उच्चतम न्यायालय में 22 अगस्त, 2022 की है। इस रिट याचिका के विरोध में आम आदमी पार्टी, डीएमके पार्टी आदि दल भी आ गए हैं। खैर, राजनीतिक दलों द्वारा चुनावी घोषणा-पत्रों में अथवा चुनावी भाषणों में फ्रीबीज पर प्रश्न उठाते हुए कहा गया है कि इससे राज्य की वित्त व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसे उपहार देना मतदाताओं को प्रलोभन देने के समान है और इससे लोकतंत्र में निष्पक्ष चुनाव प्रभावित होते हैं।

इस रिट याचिका के संबंध में केंद्र सरकार की ओर से कहा गया है कि केंद्र सरकार की इस संबंध में सीमित भूमिका है और उच्चतम न्यायालय को इस पर विचार करने के लिए एक आयोग बनाना चाहिए।

इस मामले में कुछ प्रश्नों पर विचार किया जाना है। एक, किस प्रकार की योजनाएँ अपव्यय के अंतर्गत आती हैं अथवा अवैध मानी जा सकती हैं? दूसरा, कौन-सी योजनाओं पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 282 के अंतर्गत लोक उद्देश्य के अंतर्गत परिव्यय माना जाएगा? क्या उत्तम न्यायालय इस बात पर दिशा-निर्देश देने में सक्षम है कि इस प्रकार वायदा की गई फ्रीबीज उपलब्ध कराने के लिए धन का कैसे इस्तेमाल किया जाता है? क्या यह विषय विधायिका के क्षेत्राधिकार में आता है कि वह इस बारे में समुचित क़ानून बना कर ऐसे रेवड़ी कल्चर पर अंकुश लगाए? यह मामला अभी उच्चतम न्यायालय के विचाराधीन है और अभी यह नहीं कह सकते कि कब इस पर निर्णय आएगा। किंतु 22 फरवरी, 2025 को उच्चतम न्यायालय ने रात्रि विश्राम गृहों की कमी के एक मामले पर सुनवाई करते हुए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी.

आर. गवई ने प्रश्न उठा दिया है कि क्या चुनावों में ग़रीबों को दी जा रही फ्रीबीज से उन्हें परजीवी बनाया जा रहा है और इस प्रकार उन्हें काम ख़ोजने के लिए पहल करने जैसे अवसर से वंचित किया जा रहा है और क्या इस प्रकार वह राष्ट्र के मुख्य धारा में आकर राष्ट्रीय विकास में योगदान नहीं दे सकते हैं?

बेशक रेवड़ी कल्चर की सही परिभाषा अभी तक नहीं की जा सकी है परंतु इस विषय को देश में कई प्रबुद्ध लोगों द्वारा प्रश्नगत भी किया जा रहा है। कुछ दिन पहल एन. आर. नारायण मूर्ति ने उद्यमियो के समूह को संबोधित करते हुए कहा, ''मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि आप में से प्रत्येक व्यक्ति सैंकड़ों-हजारों नौकरियाँ पैदा कर ग़रीबी की समस्या का समाधान करेंगे। आप मुफ़्त उपहार ले देकर ग़रीबी की समस्या का समाधान नहीं कर सकता है।''

मुफ्त में मिलने वाली सुविधाएँ वस्तुतः व्यक्ति को निकम्मा बना देती हैं। इसके अलावा, अगर मुफ़्त में बिजली पानी मिलता है तो प्रायः उसके प्रयोग में किफ़ायत नहीं बरती जाती। अगर बिजली का बिल न चुकाना पड़े तो लोग उसका अनाप-शनाप प्रयोग करते हैं। फिर अब जनता को राशन भी मुफ़्त दिया जा रहा है। शायद करोना काल में उसे मुफ़्त दिए जाने की ज़रूरत थी किन्तु शायद अब इस योजना को चालू रखने की ज़रूरत नहीं है परंतु किसी सुविधा को शुरू करना आसान होता है और उसे बंद करना मुश्किल। वैसे भी यह दावा भी किया जा रहा है कि पिछले कुछ वर्षों में पच्चीस करोड़ लोग ग़रीबी रेखा से ऊपर उठ चुके हैं। अब ऐसे लोगों को मुफ़्त राशन देने की ज़रूरत नहीं रह गई है।

परंतु ऐसी कल्याणकारी योजनाएँ भी बंद करना सुगम नहीं होता। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए भारतीय जनता पार्टी मुफ़्त की योजनाओं पर ब्रेक लगाने पर विचार कर रही है। फ्रीबीज के स्थान पर वैकल्पिक मॉडल पर विचार किया जा रहा है। जो राष्ट्र हित मे हो, उसे अमल में लाया ही जाना चाहिए।

❑

जगदीश चंद चौहान

एक देश, एक चुनाव : एक विश्लेषण

किसी मुद्दे या विचार पर देशव्यापी बहस हो, व्यापक विचार-विमर्श हो, यही तो एक स्वस्थ लोकतंत्र का मूल सिद्धांत है। ऐसे मंथन से जो अमृत निकले वही वास्तव में लोकहित और राष्ट्रहित में लिया गया निर्णय होगा। हमारे देश में समय-समय पर कई मुद्दों पर विचार-विमर्श होता रहा है और होता रहना चाहिए। मुझे याद पड़ता है कि जब देश में अस्थिर सरकारों का दौर आया तो उस समय इस बात पर बहस होने लगी थी कि क्या हमें संसदीय प्रणाली की बजाए राष्ट्रपति प्रणाली अपनानी चाहिए। एक समय पर बहस चली कि कई पश्चिमी देशों की तरह हमारे देश में भी कैपिटल पनिशमेंट यानि फाँसी की सज़ा को समाप्त कर देनी चाहिए। देश में दल-बदल बड़े पैमाने पर होने लगा तो उसके रोकने पर व्यापक विचार-विमर्श हुआ और दल-बदल विरोधी क़ानून के रूप में उसकी परिणिति हुई। इसीलिए तो कहा गया है कि व्यापक बहस और विचार-विमर्श एक स्वस्थ लोकतंत्र का अनिवार्य अंग है।

इसी प्रकार लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के चुनाव एक साथ करवाये जाने के मुद्दे पर लंबे समय से बहस चल रही है। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री मोदी जी ने इस विचार का समर्थन किया और इसे आगे बढ़ाया। यहाँ आपको यह भी बता दें कि 1983 में उस समय के मुख्य चुनाव आयुक्त ने लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के चुनाव एक साथ कराने का प्रस्ताव तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी जी को दिया था मगर उस वक़्त इसे आगे नहीं बढ़ाया गया। फिर 1999 में विधि आयोग ने अपनी 170वीं रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि हर पाँच साल में लोक सभा और सभी विधान सभाओं के चुनाव एक साथ कराए जाएँ।

2015 में संसदीय समिति की 79वीं रिपोर्ट में भी चुनाव एक साथ करवाने की बात कही गई और उसके तरीक़े सुझाए गए थे। इस मुद्दे पर चुनाव आयोग, नीति आयोग और विधि आयोग में भी विचार विमर्श हो चुका है।

अभी हाल ही में विधि आयोग ने देश में एक साथ चुनाव कराए जाने के मुद्दे पर विभिन्न राजनीतिक दलों, क्षेत्रीय दलों तथा प्रशासनिक अधिकारियों की राय जानने के लिए तीन दिवसीय कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया था जिसमें कुछ दलों ने इस पर सहमति जताई तथा कुछ ने इसका विरोध किया।

एक देश एक चुनाव की आवश्यकता

जीवंत लोकतंत्र में चुनाव एक अनिवार्य प्रक्रिया है। स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव लोकतंत्र की आधारशिला है। जैसा कि हम अपने देश में देख रहे हैं कि यहाँ चुनावी प्रक्रिया लगातार कहीं न कहीं चलती ही रहती है। हर वर्ष कई-कई राज्यों में विधान सभा चुनाव कराए जाते हैं जिससे देश हमेशा चुनावी मोड़ में ही रहता है। इसके साथ ही कई राज्यों में पंचायत तथा नगरपालिकाओं के चुनाव चलते रहते हैं। इससे प्रशासनिक कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बड़े पैमाने पर राज्य के अधिकारियों, कर्मचारियों, अध्यापकों को चुनावी कार्यों में लगा दिया जाता है। जिससे प्रशासनिक कार्यों में बाधा ही नहीं आती बल्कि विद्यार्थियों की पढ़ाई का भी नुक़सान होता है।आचार संहिता लागू होने से विकास कार्य रुक जाते हैं और नीतिगत निर्णय भी प्रभावित होते हैं। इन सब के अतिरिक्त देश के ख़ज़ाने पर भी इसका भारी बोझ पड़ता है। इसलिए लोक सभा और विधान सभाओं के चुनाव एक साथ कराने पर विचार किया जा रहा है।

पृष्ठभूमि क्या है?

एक देश एक चुनाव के बारे में यह कहा जा सकता है कि यह कोई नया प्रयोग नहीं है बल्कि 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू होने के पश्चात् 1952, 1957, 1962 और 1967 में लोक सभा चुनावों के साथ ही अधिकतर विधान सभाओं के चुनाव भी हुए थे। यह क्रम तब टूटा जब 1968-69 में कुछ राज्यों की विधान सभाओं को विभिन्न कारणों से समय से पहले भंग कर दिया गया। इसी तरह 1971 में लोक सभा का चुनाव भी समय से पहले करवाए गए जिससे सारा क्रम पूरी तरह से टूट गया। प्रधानमंत्री मोदी जी ने सितंबर, 2023 में पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में एक देश, एक चुनाव की संभावनाओं का पता लगाने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया गया। समिति के अन्य सदस्य थे --

1. केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह
2. पूर्व केंद्रीय मंत्री गुलाम नबी आज़ाद
3. 25वें वित्त आयोग के पूर्व अध्यक्ष एन.के. सिंह
4. लोक सभा के पूर्व महासचिव डॉ. सुभाष कश्यप
5. वरिष्ठ अधिवक्ता हरीश साल्वे, और
6. चीफ विज़िलेंस कमिश्नर संजय कुठारी।

इसके अलावा राज्य मंत्री अर्जुन राम मेघवाल और डॉ. नितेन चंद्र इस समिति के विशेष आमंत्रित सदस्य थे।

इस समिति ने 18626 पन्नों की विस्तृत रिपोर्ट तैयार की और मार्च, 2024 में यह रिपोर्ट भारत की राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू जी को प्रस्तुत की।

समिति ने सभी पक्षों, जानकारों, शोधकर्ताओं से बातचीत करके यह रिपोर्ट तैयार की।

47 राजनीतिक दलों के इसमें विचार सांझा किए गए जिसमें से 32 दलों ने एक देश एक चुनाव का समर्थन किया और कहा कि ये तरीक़ा संसाधनों की बचत एवं सामाजिक तालमेल

बनाए रखने और आर्थिक विकास को तेज़ी देने में मददगार साबित होगा।

एक साथ चुनाव कराने के मुद्दे पर देश में व्यापक समर्थन प्राप्त है ऐसा बातचीत और फीड बैक से पता चला है। समिति ने एक देश एक चुनाव को दो चरणों में पूरा करने की सिफ़ारिश की --

पहले चरण में लोक सभा और विधान सभाओं के चुनाव, तथा

दूसरे चरण में 100 दिनों के भीतर पंचायतों और नगर पालिकाओं के चुनाव सम्पन्न कराए जाएँ। सभी चुनावों के लिए एक ही मतदाता सूची का इस्तेमाल हो। इस पर देश में विस्तृत चर्चा हो। चुनाव प्रणाली में बदलाव को लागू करने के लिए एक ख़ास टीम बनाई जाए।

सितंबर, 2024 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने इस समिति की सिफ़ारिशों को मंज़ूरी दी। 12 दिसंबर को एक देश एक चुनाव से जुड़े विधेयक को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने अपनी मंज़ूरी दे दी जो इस विषय पर क़ानून बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण क़दम है।

17 दिसंबर, 2024 को इस संबंध में दो विधेयक पेश किए गए। पहला संविधान (129वाँ संशोधन) विधेयक 2024; दूसरा केंद्र शासित क़ानून (संशोधन) विधेयक 2024 जिसके तहत पुड्डुचेरी, दिल्ली और जम्मू कश्मीर के विधान सभाओं के चुनाव लोक सभा चुनावों के साथ कराए जा सकें। इस संशोधन बिल के ज़रिये इन तीन एक्ट में बदलाव किया जा सकेंगे।

देश के ज़्यादातर बड़े विपक्षी दल इस विधेयक का विरोध कर रहे हैं। विधेयक को लोक सभा में पेश करने का विपक्षी दलों द्वारा विरोध किया गया। इसीलिए सदन में मत विभाजन कराना पड़ा जहाँ पक्ष में 269 मत पड़े और विपक्ष में 198 मत पड़े।

तत्पश्चात्, इन विधेयकों को संयुक्त संसदीय समिति को व्यापक विचार-विमर्श के लिए भेज दिया गया। इस संयुक्त संसदीय समिति के अध्यक्ष भाजपा सांसद श्री पी पी चौधरी हैं और इस समिति के सदस्यों की संख्या 31 से बढ़ाकर 39 कर दी गई है ताकि सभी प्रमुख दलों के सदस्य इस बड़े निर्णय को लेकर अपनी अपनी राय दे सकें। अभी तो संयुक्त संसदीय समिति इस पर व्यापक विचार-विमर्श करेगी। सभी राजनीतिक दलों, संगठनों और साधारण लोगों की राय जानने के पश्चात् अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

सरकार का मानना है कि इससे चुनावी ख़र्चे में भारी कमी आएगी, विकास कार्यों में तेज़ी आएगी और सरकारी कर्मचारियों को बार-बार चुनावी ड्यूटी से छुटकारा मिलेगा और वह अपना निर्धारित कार्य समयानुसार कर सकेंगे। वहीं विपक्षी दलों का कहना है कि यह संघीय ढाँचे के ख़िलाफ़ है। यह संविधान के मूल ढाँचे पर हमला है। कांग्रेस पार्टी का कहना है कि उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार सरकार संविधान के मूल ढाँचे में कोई बदलाव नहीं कर सकती। यह भी कहा जा रहा है कि इससे चुनावों में लोगों की भागीदारी भी कम होगी। कुछ क्षेत्रीय दलों का मानना है कि एक देश एक चुनाव से उनका अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ सकता है।

कुछ लोगों का मानना है कि बीच-बीच में चुनाव होने से सरकार की जबावदेही सुनिश्चित होती है, उसके कार्यों की जनता द्वारा समय-समय पर समीक्षा होती रहती है। इसलिए बीच-बीच में चुनाव होना जीवंत लोकतंत्र के लिए ज़रूरी है। अगर ऐसा नहीं होगा तो सरकार निरंकुश

हो सकती है और तानाशाही प्रवृत्ति बढ़ सकती है। यह भी तर्क दिया जा रहा है कि एक साथ चुनाव कराने से चुनावों में राष्ट्रीय मुद्दे ही हावी रहेंगे और स्थानीय मुद्दे गौण हो जाएंगे, जबकि विधान सभा चुनाव हमेशा स्थानीय मुद्दों पर लड़े जाते हैं न कि राष्ट्रीय मुद्दों पर।

हमने देखा है कि ओडिशा और आंध्र प्रदेश विधान सभाओं के चुनाव कई बर्षो से लोक सभा चुनावों के साथ ही करवाये जा रहे हैं जिसमें बर्षों से उन राज्यों में क्षेत्रीय दल ही चुनाव जीतते आ रहे हैं और लोक सभा में भी उनके ही ज़्यादातर सदस्य जीतते रहे हैं। इससे ये तो नहीं कहा जा सकता कि क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व या अस्तित्व ख़तरे में पड़ जाएगा या लोगों के स्थानीय मुद्दे गौण हो जाएंगे। शायद यह एक मनघडंत और भ्रांत धारणा है।

एक देश एक चुनाव न तो किसी तरह से संघीय ढाँचे के ख़िलाफ़ है, न यह संविधान के मूल ढाँचे के साथ कोई छेड़छाड़ करने वाला प्रावधान है क्योंकि देश में पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे आम चुनाव भी लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के साथ-साथ ही कराए गए थे। ये तो सर्वविदित है ही कि इससे चुनावी ख़र्चे में बड़ी कमी आएगी जिससे विकास की गति बढ़ेगी और कर्मचारियों को बार-बार चुनावी ड्यूटी से छुटकारा मिल जाएगा, सरकारी काम बिना किसी रुकावट के जारी रहेंगे और उनमें एक निरंतरता बनी रहेगी।

वास्तव में बाक़ी दल भारतीय जनता पार्टी की आक्रामकता से सशंकित हैं। पहले राज्यों के चुनाव राज्य तक ही सीमित रहते थे लेकिन अब एक तो सोशल मीडिया की सक्रियता बढ़ गई है और दूसरे भारतीय जनता पार्टी जिस आक्रामकता से हर छोटा बड़ा चुनाव लड़ती है, केंद्रीय नेतृत्व को उसमें शामिल कर लेती है और उसे एक राष्ट्रीय इवेंट बना देती है वही दूसरे दलों को शंकित कर रहा है कि वे उसका मुक़ाबला नहीं कर पाएँगे। उन्हें लगता है कि इस तरह से तो कई राजनीतिक दलों का अस्तित्व ही ख़त्म हो सकता है और सब जगह एक पार्टी का एकछत्र शासन हो जाएगा और वह अपनी मनमानी और तानाशाही लागू कर सकती है। यही उनकी शंका का मूल कारण है।

सरकार जानती है कि इस संविधान संशोधन विधेयक को पास कराना उसके लिए बड़ी टेड़ी खीर है क्योंकि इसके लिए उसे संसद के प्रत्येक सदन में दो-तिहाई बहुमत हासिल करना पड़ेगा जो एनडीए सरकार के पास अभी नहीं है। जब तक इंडी गठबंधन के कुछ बड़े दलों का समर्थन सरकार को नहीं मिलता तब तक सरकार को इसे पास कराना संभव नहीं होगा। ये बड़े अफ़सोस कि बात है कि आजकल राजनीतिक दलों में आपसी वैमनस्य और कटुता इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि किसी राष्ट्रहित के मुद्दे पर भी आपसी सहमति बनाना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव हो चुका है। ऐसे में इस महत्त्वपूर्ण संविधान संशोधन विधेयक का भविष्य क्या होगा ये बताना फिलहाल तो संभव नहीं लगता।

❑

संतोष बंसल

जब भारत बनाम इंडिया मसला सुलझा

आजकल भारत बनाम इंडिया मसले पर भले ही विवाद अधिक हो रहा है, लेकिन यह मुद्दा नया नहीं है। यह मामला 1949 से ही उठता आ रहा है, जब डॉक्टर बी.आर. अंबेडकर ने 'इंडिया बनाम भारत' विवाद को सुलझाया था। 9 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा पहली बार बुलाई गई थी। इसके बाद दो साल ग्यारह महीनों के दौरान, संविधान सभा ने कुल 11 सत्रों के उपरांत भारतीय संविधान तैयार करने का काम पूरा किया था। लेकिन 166 दिनों की गहन बहस के बावजूद 18 सितंबर, 1949 तक संविधान सभा देश के लिए एक नाम को अंतिम रूप देने में सक्षम नहीं थी। असली कहानी 17 सितंबर, 1949 से शुरू हुई थी, जब उसमें एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा लंबित था -- अनुच्छेद-1। तत्कालीन क़ानून और न्याय मंत्री डॉक्टर बी.आर. अंबेडकर समझ गए थे कि यह निर्णय मुश्किल होगा। वे चाहते थे कि अनुच्छेद-1 को उसी दिन अपनाया जाए, जबकि कुछ प्रतिनिधियों ने मतदान से पहले लंबी बहस करने पर ज़ोर दिया। जब 18 सितंबर, 1949 को सुबह नौ बजे संविधान सभा की बैठक हुई, तो सबसे पहले बोलने वाले श्री एच.वी. कामथ थे। उस समय सुझाये गए नाम भारत, हिंदुस्तान, हिंद और भारत भूमि या भारत वर्ष थे। जैसे ही कामथ ने भारत नाम की उत्पत्ति के बारे में गहराई से बताना शुरू किया और इसका संबंध वैदिक युग के दौरान की प्रसिद्ध कथा राजा दुष्यंत और शकुंतला के पुत्र 'भरत' के नाम से जोड़ा, तो डॉक्टर अंबेडकर ने उन्हें टोक दिया। उन्होंने कहा कि क्या यह सब पता लगाना आवश्यक है? मैं इसका उद्देश्य नहीं समझता। लेकिन कामथ अड़े रहे और इसे 'संवैधानिक चूक' कहा। साथ ही कहा कि डॉक्टर अंबेडकर ने अतीत में बहुत-सी ग़लतियों को स्वीकार किया है, आशा है वे इसे भी स्वीकार करके इस खंड को संशोधित करेंगे।

कामथ के बाद बिहार से ब्रजेश्वर प्रसाद आए, उन्होंने प्रस्तावित किया कि अनुच्छेद-1 में कहा जाना चाहिए, "इंडिया यानी भारत एक अभिन्न इकाई है।" इसके बाद हसरत मोहानी ने संशोधन पेश करते हुए कहा कि भारत प्रांतों का संघ नहीं, बल्कि सार्वभौमिक जनतंत्र प्रांतों का संघ होना चाहिए। उन्होंने याद दिलाया कि नेहरूजी ने उद्देश्य प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा था कि हमारे देश का नाम 'सार्वभौमिक जनतंत्र 'भारत' होगा, लेकिन अब इस उद्देश्य प्रस्ताव से क्यों पीछे हटा जा रहा है? कुछ सदस्यों ने, जिनमें पंडित कमलापति त्रिपाठी और

श्री राम सहाय के नाम उल्लेखनीय हैं, इस धारा के शब्दों की आलोचना की और कहा कि 'इंडिया अथवा भारत के बजाय, भारत अथवा इंडिया होना चाहिए, क्योंकि इंडिया अथवा भारत कहने से भारत को गौण स्थान प्राप्त होता है।' पंडित त्रिपाठी ने संशोधन पर हृदय का उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा कि मसविदा समिति ने देश के नामकरण के संबंध में जो संशोधन उपस्थित किया है, उसके शब्द यदि दूसरे प्रकार के होते, तो वह देश के गौरव और परंपरा के अनुसार होता। श्री कामथ ने जो संशोधन पेश किया है कि देश का नाम 'भारत अथवा इंडिया हो, न कि इंडिया अथवा भारत' उसे स्वीकार करने से हमारे देश का गौरव बढ़ता है। उन्होंने कहा कि ''फिर भी मसविदा समिति ने जो संशोधन पेश किया है, उसे हम पसंद करते हैं। जब देश पराधीन हुआ, तब उसने अपनी संस्कृति खो दी, मनुष्यता खो दी, गौरव खो दिया, अपना स्वरूप और नाम भी खो दिया। लुप्त हुई संज्ञा को प्राप्त करने के पश्चात् अब वह उस गौरव को प्राप्त कर सकेगा।'' (19 सितंबर, 1949, हिंदी हिंदुस्तान) लेकिन इसका कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका। श्री कामथ के इस संशोधन के पक्ष में 38 और विरोध में 51 मत आए तथा बहुमत के बिना कामथ का संशोधन संविधान में शामिल नहीं हो सका।

तत्पश्चात्, संविधान सभा ने देश के नाम के संबंध में 1. धारा स्वीकृत की और देश का नाम 'इंडिया अर्थात् भारत' स्वीकार कर लिया। धारा एक स्वीकृत हो जाने के पश्चात् सदस्यों ने 'भारत माता की जय' के नारे से इस निश्चय का स्वागत किया। इसके पश्चात् अध्यक्ष ने वर्तमान अधिवेशन को स्थगित करने की घोषणा की और कहा कि आगामी अधिवेशन संभवतः 6 अक्टूबर से प्रारंभ होगा। वस्तुतः हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संविधान सभा द्वारा भारतीय संविधान को मूल रूप से अंग्रेज़ी में अंगीकृत किया गया था। यह संविधान के मूलभूत पाठ के रूप में अंग्रेज़ी संस्करण के ऐतिहासिक और विधिक महत्त्व को रेखांकित करता है। अंग्रेज़ी संस्करण के अलावा, भारतीय संविधान का हिंदी अनुवाद वर्ष 1950 में प्रकाशित किया गया। इस अनुवाद पर संविधान सभा के सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गए और संविधान सभा द्वारा पारित एक प्रस्ताव के अनुसार इसका अनुमोदन किया गया। संविधान का अनुच्छेद-1 देश के नाम और स्वरूप को परिभाषित करता है। अंग्रेज़ी संस्करण में कहा गया है -- "India, that is Bharat, shall be a union of states", यहाँ प्राथमिक नाम के रूप में 'इंडिया' शब्द पर बल दिया गया है। हिंदी संस्करण में लिखा है -- "भारत, अर्थात इंडिया, राज्यों का संघ होगा'', यहाँ भारत नाम को प्रमुखता दी गई है। भारत ने सभी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'इंडिया' नाम का उपयोग किया है, जो यह दर्शाता है कि देश की अंतरराष्ट्रीय पहचान और मान्यता 'इंडिया' नाम के साथ संबंध है। इसके साथ भारत आधिकारिक दस्तावेज़ों और राजनयिक संदर्भों में दोहरी भाषा के दृष्टिकोण का पालन करता है। भारत के राष्ट्रपति द्वारा नामित राजदूतों को सौंपे जाते प्रत्यय पत्र में राष्ट्रीय प्रतीक के नीचे 'राष्ट्रपति' और 'भारत गणतंत्र' शब्द हिंदी में लिखें होते हैं, जबकि उसके नीचे अंग्रेज़ी में 'प्रेसिडेंट' और 'रिपब्लिक ऑफ़ इंडिया' लिखे होते हैं।

अगर हम देश के नामों की उत्पत्ति का इतिहास छाने, तो 'इंडिया और इसके विभिन्न रूप, जैसे कि अरबी में 'हिंद' विदेशी मूल के हैं। इन नामों का इस्तेमाल ऐतिहासिक रूप से बाहरी लोगों द्वारा सिंधु या सिंधु नदी के दक्षिण और पूर्व की भूमि को संदर्भित करने के लिए किया जाता था। अफ़गान और मुग़ल शासन के दौरान 'हिंदुस्तान' शब्द का प्रयोग अक्सर भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी क्षेत्रों को संदर्भित करने के लिए किया जाता था। बाद में यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियां, विशेष रूप से ब्रिटिशों ने 'भारत' शब्द का इस्तेमाल न केवल उत्तरी क्षेत्र, बल्कि पूरे उपमहाद्वीप को दर्शाने के लिए किया। किंतु मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व वाली मुस्लिम लीग ने नए स्वतंत्र राष्ट्र के लिए 'इंडिया' नाम के इस्तेमाल पर चिंता जताई। उनका तर्क था कि 'इंडिया' को हिंदू बहुल क्षेत्रों से जोड़ा जाना चाहिए, जबकि मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों को एक अलग राष्ट्र, पाकिस्तान के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। इसके विपरीत, नेताजी सुभाष बोस ने एक समन्वयकारी शब्द 'हिंद' की वकालत की, जो विभिन्न धर्मों के लोगों सहित व्यापक श्रेणी के लोगों को स्वीकार्य हो सके। वैसे 'हिंद' आज भी प्रयोग में है और 'जय हिंद' जैसे शब्द भारतीय संस्कृति में इसके स्थायी महत्त्व को दर्शाते हैं। किंतु पिछले दिनों नाम संबंधी यह विवाद पुनः तब गरमाया, जब प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में वर्तमान सरकार ने जी-20 शिखर सम्मलेन के निमंत्रण कार्ड पर 'President of India' के बजाय 'President of Bharat' शब्द का उपयोग किया। शब्दावली में इस बदलाव पर प्रतिक्रिया आई और इन नामों के उपयोग के राजनीतिक आयाम प्रकट हुए। वस्तुतः देश के नाम का यह विवाद, विपक्ष द्वारा गठबंधन का नाम 'I.N.D.I.A' करने पर पैदा हुआ। जबकि सत्ता पक्ष इसे 'कोलोनियल' या उपनिवेश का चिह्न कहकर इस बदलाव को जायज़ ठहराता है।

अंततः हम नाम संबंधी इस विवाद का सियासी पहलू न देख, इस के भाषानुसार उपयोग को समझे। जैसे हिंदी में 'भारत छोड़ो' बिलकुल सही था, उसी तरह अंग्रेज़ी में 'क्विट इंडिया' भी उचित था। वैसे यह वही केंद्रीय सरकार है, जिसने 'इंडिया शाइनिंग' और 'डिज़िटल इंडिया' जैसे नारे दिए थे और 'न्यू इंडिया' जैसे प्रारूप पेश किया थे। इसके अलावा वर्ष 2015 में केंद्र ने यह कहते हुए किसी भी नाम परिवर्तन का विरोध किया था कि संविधान के प्रारूपण के दौरान इस मुद्दे पर व्यापक विचार-विमर्श किया जा चुका है। वस्तुतः भारत का सर्वोच्च न्यायालय 'इंडिया' का नाम बदलकर 'भारत' करने संबंधी याचिका को दो बार ख़ारिज़ कर चुका है। (2016 और 2020) एवं यह पुष्टि की कि 'भारत' और 'इंडिया' दोनों का संविधान में उल्लेख है एवं इस तरह का नाम परिवर्तन देश के उन हिस्सों को अलग-अलग कर सकता है, जो भारत 'के बजाय 'इंडिया' नाम को प्राथमिकता देते हैं। देश के नाम के संबंध में सार्वजनिक भावनाएँ और क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ विविध हैं तथा किसी भी निर्णय में इस पर विचार किया जाना चाहिए। इस परंपरा से किसी भी बदलाव से सांस्कृतिक और अस्मिता संबंधी निहितार्थ उत्पन्न हो सकते हैं। अंग्रेज़ी में इंडिया और हिंदी में भारत का उपयोग, भारत की भाषाई विविधता को दर्शाता है है और इसे संवैधानिक रूप से सही माना जाता है। समकालीन

भारत में 'जय हिंद और जय भारत' दोनों का उपयोग देखा जाता है, जो विभिन्न सांस्कृतिक और भाषायी परंपराओं के सहअस्तित्व को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, अधिकांश प्रमुख भाषणों में इन दोनों संबोधनों का उपयोग किया जाता है, जो राष्ट्र के ताने-बाने का निर्माण करने वाले विविध ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तंतुओं की मान्यता को दर्शाता है। यह दृष्टिकोण बहुभाषावाद और अपनी विविध भाषाई विरासत के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

❑

संदर्भ

1. इंडिया टुडे की रिपोर्ट, दिनांक 9 दिसंबर, 1946
2. वाद-विवाद, संविधान सभा, 18 सितंबर, 1946
3. हिंदुस्तान हिंदी, 18 सितंबर, 1949
4. वाद-विवाद, संविधान सभा।

नेहा प्रजापति

डीपफेक तकनीक का साइबर सुरक्षा में खतरा : महिलाओं के लिए इसके निहितार्थ और निवारण की रणनीतियाँ

सारांश

डीपफेक तकनीक, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन लर्निंग का उपयोग करके वास्तविक लेकिन निर्मित मीडिया उत्पन्न करती है, साइबर सुरक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करती है। ऑडियो और दृश्य सामग्री में हेरफेर करके यथार्थपूर्ण अनुकरण उत्पन्न करने से, डीपफेक डिज़िटल मीडिया में विश्वास को कमज़ोर करता है और विभिन्न सुरक्षा जोखिम उत्पन्न करता है। यह पत्र डीपफेक की घटना, साइबर सुरक्षा पर इसके निहितार्थ, विशेष रूप से महिलाओं के लिए जो अनूठे ख़तरों का सामना करती हैं, और पहचान और निवारण के लिए आवश्यक रणनीतियों की पड़ताल करता है। डीपफेक तकनीक के प्रसार ने सूचना विकृति अभियानों, पहचान की चोरी, वित्तीय धोखाधड़ी और राजनीतिक हेरफेर में इसके संभावित दुरुपयोग को लेकर चिंताएँ बढ़ाई हैं। महिलाएँ विशेष रूप से ऑनलाइन हिंसा, उत्पीड़न और यौन शोषण का शिकार हो सकती हैं, क्योंकि डीपफेक तकनीक का उपयोग उन्हें अनिच्छा और हानिकारक परिदृश्यों में दर्शाने के लिए किया जा सकता है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए कई दृष्टिकोणों की आवश्यकता है, जिनमें AI आधारित डिटेक्टर्स, डिज़िटल फॉरेन्सिक्स तकनीक, ब्लॉकचेन तकनीक और पहचान सुरक्षा उपकरण शामिल हैं। संगठनों और अंतिम उपयोगकर्ताओं को सतर्कता, जागरूकता और रक्षा तंत्र के निरंतर विकास को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि डीपफेक द्वारा उत्पन्न जोखिमों को कम किया जा सके।

परिचय

डीपफेक तकनीक, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन लर्निंग एल्गोरिदम के माध्यम से संचालित होती है, हाल के वर्षों में तेज़ी से विकसित हुई है, जिससे अत्यधिक यथार्थवादी कृत्रिम मीडिया का निर्माण संभव हुआ है, जो चेहरों, आवाज़ों और पूरे व्यक्तित्त्वों को नियंत्रित कर सकता है। जबकि इस तकनीक के मनोरंजन और शिक्षा में वैध उपयोग हैं, इसके दुरुपयोग की क्षमता साइबर सुरक्षा के लिए बड़े ख़तरे उत्पन्न करती है, विशेष रूप से संवेदनशील

जनसंख्याओं के लिए। डीपफेक उत्पादन, जो उन्नत कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन लर्निंग द्वारा संचालित होता है, एक बड़ा साइबर सुरक्षा ख़तरा बन गया है। जनरेटिव एडवर्सेरियल नेटवर्क्स (GANs) और ऑटोएन्कोडर्स जैसे गहरे सीखने वाले आर्किटेक्चर का उपयोग करते हुए, डीपफेक सिस्टम्स छवियों और वीडियो के बड़े डेटासेट का विश्लेषण करते हैं ताकि पैटर्न की नक़ल कर सकें और कृत्रिम मीडिया उत्पन्न कर सकें, जिसे वास्तविक सामग्री से अलग करना मुश्किल हो गया है। जबकि यह तकनीकी प्रगति नवीनतम अनुप्रयोगों का कारण बनी है, इसकी पहुँच ने दुरुपयोग के लिए अवरोध को भी कम कर दिया है, जिससे ग़लत सूचना अभियानों, पहचान चोरी, वित्तीय धोखाधड़ी और राजनीतिक हेर-फेर जैसी दुर्बुद्ध गतिविधियाँ उत्पन्न हो रही हैं।

लिंग-विशिष्ट निहितार्थ

डीपफेक शोषण के लिए सबसे संवेदनशील महिलाओं में से एक हैं, जो साइबर आधारित लिंग हिंसा से असामान्य रूप से प्रभावित होती हैं। शोध से यह पता चलता है कि एक बड़ी प्रतिशत में दुर्बुद्ध डीपफेक सामग्री महिलाओं को लक्षित करती है, जो अक्सर अवांछित अंतरंग सामग्री या परिवर्तित पेशेवर प्रस्तुतियाँ उत्पन्न करती है, जो प्रतिष्ठा और करियर को नुक़सान पहुँचा सकती हैं। प्रतिष्ठा को नुक़सान पहुँचाने से परे, डीपफेक-आधारित हमलों के परिणामों में दीर्घकालिक मानसिक आघात, पेशेवर करियर में विघटन, सोशल मीडिया उत्पीड़न, डॉकसिंग, वित्तीय हानि और आत्म-सेंसरशिप के कारण ऑनलाइन भागीदारी में कमी शामिल हैं।

वर्तमान निवारण रणनीतियाँ

डीपफेक ख़तरों से निपटने के प्रयासों में तकनीकी समाधान और क़ानूनी ढाँचों का संयोजन शामिल है। डिटेक्शन विधियाँ, जैसे डिज़िटल वॉटर मार्किंग, न्यूरल नेटवर्क-आधारित डिटेक्शन सिस्टम, ब्लॉकचेन सत्यापन प्रोटोकॉल, और मेटाडेटा विश्लेषण उपकरण, डीपफेक सामग्री की पहचान करने का लक्ष्य रखते हैं। रोकथाम तंत्र, जैसे प्रमाणीकरण प्रोटोकॉल, डिज़िटल सिग्नेचर सिस्टम, और सामग्री की उत्पत्ति ट्रैकिंग, सुरक्षा बढ़ाने में मदद करते हैं। इस बीच, विधायी उपायों ने क़ानूनी दंड के माध्यम से डीपफेक ख़तरों को संबोधित करना शुरू कर दिया है, जो दुर्बुद्ध सामग्री निर्माण, पीड़ितों के लिए नागरिक उपाय, प्लेटफॉर्म ज़िम्मेदारी आवश्यकताएँ, और सामग्री मॉडरेशन दिशानिर्देशों के लिए हैं।

डीपफेक तकनीक का साइबर सुरक्षा ख़तरा

डीपफेक तकनीक, जो उन्नत कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन लर्निंग का लाभ उठाती है, एक महत्त्वपूर्ण साइबर सुरक्षा चुनौती प्रस्तुत करती है। यह तकनीक ऑडियो और दृश्य सामग्री में हेर-फेर करके अत्यधिक यथार्थवादी लेकिन निर्मित मीडिया उत्पन्न कर सकती है,

जिससे डिज़िटल संचार में विश्वास को कमज़ोर किया जा सकता है और सुरक्षा जोखिम बढ़ सकते हैं। डीपफेक उपकरणों की व्यापक उपलब्धता ने इसके दुरुपयोग की संभावना को बढ़ा दिया है, जैसे कि ग़लत सूचना अभियानों, पहचान चोरी, वित्तीय धोखाधड़ी और राजनीतिक हेरफेर में।

डीपफेक के लिंग-आधारित निहितार्थ

डीपफेक तकनीक एक शक्तिशाली उपकरण बन गई है जो तकनीकी-आधारित शोषण के लिए विशेष रूप से महिलाओं को लक्षित करती है। महिलाएँ ऑनलाइन उत्पीड़न, साइबर स्टॉकिंग और डिज़िटल यौन शोषण से असामान्य रूप से संवेदनशील होती हैं। डीपफेक का उपयोग अवांछित सामग्री उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप गंभीर सामाजिक, पेशेवर और मानसिक परिणाम हो सकते हैं। उदाहरण के रूप में, कुछ मामलों में व्यक्तियों, जिनमें हाई स्कूल के छात्र भी शामिल हैं, को मौत की धमकियाँ, बलात्कार की धमकियाँ और स्टॉकिंग का सामना करना पड़ा है, जब उनकी छवियों को डीपफेक पोर्नोग्राफी में परिवर्तित कर दिया गया था।

डीपफेक के इस लिंग-आधारित पहलू ने साइबर-आधारित लिंग हिंसा की मौजूदा समस्याओं को बढ़ा दिया है, महिलाओं की स्वायत्तता को सार्वजनिक अपमान, फिरौती और मानसिक तनाव के माध्यम से कमज़ोर किया है। डीपफेक का लिंग-आधारित शोषण के एक उपकरण के रूप में उपयोग इस बात की ओर इशारा करता है कि ऐसी शोषण की प्रभावी रोकथाम के लिए मज़बूत डिज़िटल सुरक्षा और क़ानूनी ढाँचों की तत्काल आवश्यकता है।

डीपफेक के लिए साइबर सुरक्षा रणनीतियाँ : डिटेक्शन और निवारण

डीपफेक से उत्पन्न ख़तरों को कम करने के लिए एक समग्र साइबर सुरक्षा रणनीति की आवश्यकता होती है, जिसमें तकनीकी समाधान, नीति उपाय और सार्वजनिक जागरूकता शामिल हो। प्रमुख दृष्टिकोण में शामिल हैं :

1. **AI आधारित डिटेक्टर्स :** उन्नत AI उपकरण वीडियो और ऑडियो में असंगतताओं का विश्लेषण करते हैं, जिससे डीपफेक सामग्री की पहचान करने में मदद मिलती है।
2. **डिजिटल फॉरेन्सिक्स तकनीक 5** विशेषज्ञ डिज़िटल मीडिया में छेड़छाड़ और हेर-फेर के संकेतों का मूल्यांकन करते हैं।
3. **ब्लॉकचेन तकनीक :** अपरिवर्तनीय डिज़िटल वॉटरमार्क का उपयोग मीडिया सामग्री की प्रामाणिकता को सत्यापित करने के लिए किया जा सकता है।
4. **पहचान सुरक्षा उपकरण :** सुरक्षा समाधान व्यक्तियों को उनके डिज़िटल पहचान को शोषण से बचाने में मदद करते हैं।

जैसा कि डीपफेक तकनीक विकसित हो रही है, सुरक्षा टीमें और व्यक्तियों को सतर्क

रहना चाहिए। जो लोग उच्च जोखिम में हैं, उन्हें बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण विधियों पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए, क्योंकि डीपफेक कुछ बायोमैट्रिक सुरक्षा प्रणालियों को ख़तरे में डाल सकते हैं। संगठनों और उपयोगकर्ताओं को डीपफेक से संबंधित ख़तरों का प्रभावी रूप से मुक़ाबला करने के लिए प्रतिरोध, जागरूकता और रक्षा तंत्र के निरंतर अनुकूलन पर ज़ोर देना चाहिए।

प्रौद्योगिकी में सुधार को मज़बूत साइबर सुरक्षा रणनीतियों के साथ जोड़कर, समाज डीपफेक के हानिकारक प्रभाव को कम कर सकता है और डिज़िटल मीडिया की अखंडता को बनाए रख सकता है।

यह चित्र डीपफेक के विभिन्न दुर्बुद्ध उपयोगों को उजागर करता है, जो AI जनित वीडियो या छवियाँ होती हैं जो वास्तविकता में हेरफेर करती हैं। प्रमुख क्षेत्रों की चिंता निम्नलिखित हैं :

1. **चुनाव में हेरफेर :** डीपफेक का उपयोग राजनीतिक परिणामों को प्रभावित करने के लिए किया जा सकता है, जैसे कि उम्मीदवारों या अधिकारियों के झूठे वीडियो बनाना, जिनमें वे विवादास्पद बयान देते हैं या अनुचित व्यवहार में लिप्त होते हैं।
2. **सेलिब्रिटी पोर्नोग्राफी :** इस तकनीक का दुरुपयोग करके सेलिब्रिटी को बिना सहमति के स्पष्ट वीडियो बनाए जाते हैं।
3. **सोशल इंजीनियरिंग :** डीपफेक साइबर अपराधियों को लोगों को धोखा देने में मदद कर सकता है, जैसे कि बॉस, सहकर्मियों या प्रियजनों की नक़ल करके।
4. **स्वचालित गलत सूचना हमले :** इन हमलों में डीपफेक का उपयोग ग़लत जानकारी फैलाने के लिए किया जाता है, जो जनता में भ्रम और अस्थिरता पैदा कर सकता है।
5. **धोखाधड़ी और झूठे समाचार :** अपराधी लोगों को धोखा देने के लिए डीपफेक का उपयोग करते हैं, जैसे कि नक़ली सहायता कॉल्स या नक़ली समाचार।
6. **वित्तीय धोखाधड़ी :** डीपफेक वित्तीय अपराधों में उपयोग किए जाते हैं, जैसे कि बैंक अधिकारियों या अन्य वित्तीय प्राधिकरणों की नक़ल करके व्यक्तियों से संवेदनशील जानकारी प्राप्त करना या धन स्थानांतरित कराना।
7. **पहचान चोरी :** डीपफेक साइबर अपराधियों को किसी की पहचान की नक़ल करने में मदद कर सकते हैं, ताकि वे धोखाधड़ी गतिविधियाँ कर सकें, जैसे कि व्यक्तिगत ख़ातों का एक्सेस प्राप्त करना या संवेदनशील डेटा चुराना।

समीक्षा साहित्य

डीपफेक प्रौद्योगिकी गोपनीयता, सुरक्षा और विश्वास के क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण जोखिम उत्पन्न करती है, जिसके लिए इसके दुरुपयोग को पहचानने और कम करने के लिए सक्रिय उपायों की आवश्यकता होती है। डीपफेक तकनीक, जो एआई और मशीन लर्निंग का एक उन्नत

अनुप्रयोग है, साइबर सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण जोखिम उत्पन्न करती है। मारास और अलेक्जेंड्रू (2023) इसके डिज़िटल विश्वास पर प्रभाव को उजागर करते हैं, जबकि चेसनी और सिट्रोन (2021) इसके ग़लत सूचना और धोखाधड़ी में भूमिका पर चर्चा करते हैं। गैन (GANs), जैसा कि गुडफेलो एट अल. (2014) द्वारा वर्णित किया गया है, धोखाधड़ी मीडिया बनाने की क्षमता प्रदान करते हैं, जो साइबर ख़तरों में उपयोग किए जाते हैं। डीपफेक फिशिंग, प्रतिरूपण धोखाधड़ी और ग़लत सूचना फैलाने में मदद करते हैं, जो डिज़िटल प्रमाणन की चुनौती बनाते हैं (एलीश, 2023; पोप, 2022; हाओ, 2023)। पहचानने के उपाय, जैसे कि एआई-प्रेरित फोरेंसिक टूल्स, महत्त्वपूर्ण होते हैं लेकिन उन्हें निरंतर विकसित होना चाहिए (ल्यू, 2023; यांग एट अल, 2024)। प्रभावी रूप से इन ख़तरों को कम करने के लिए सार्वजनिक जागरूकता, नियम और हितधारकों के बीच सहयोग आवश्यक है (राव, 2023; कुमार, 2023)। पहचानने और सुरक्षा में निरंतर प्रगति डीपफेक ख़तरों का मुक़ाबला करने के लिए आवश्यक है (चेन और ली, 2023)। डीपफेक प्रौद्योगिकी के उदय ने डिज़िटल प्रतिरूपण में वृद्धि की है, जो विशेष रूप से महिलाओं को प्रभावित करता है। जेन (2016) नोट करते हैं कि महिलाएँ ऐतिहासिक रूप से मीडिया शोषण की मुख्य लक्ष्यमानी रही हैं, और अब डीपफेक का उपयोग शोषण, अपमान और धमकी के उपकरण के रूप में किया जाता है (वेस्टर्लुंड, 2019; ईटन और मैकग्लिन, 2020)। ऑनलाइन मौजूद अधिकांश (96 प्रतिशत) डीपफेक सामग्री में महिलाओं के लिए बिना सहमति के यौन-सम्बंधी सामग्री होती है (वांग, 2019), और डीपन्यूड जैसे अनुप्रयोग बिना सहमति के नक़ली नग्न छवियाँ उत्पन्न करते हैं (कोल, 2019; बर्गेस, 2020)।

क़ानूनी और नियामक चुनौतियाँ डीपफेक शोषण को संबोधित करना मुश्किल बनाती हैं। क़ानून अपर्याप्त हैं, और डीपफेक निर्माताओं की गुमनामी जवाबदेही को जटिल बनाती है (चेसनी और सिट्रोन, 2019a, 2019b; सिट्रोन, 2014)। पीड़ितों को अक्सर निरंतर नुक़सान का सामना करना पड़ता है, क्योंकि डीपफेक सामग्री आसानी से ऑनलाइन प्रसारित हो जाती है, और उनके पास कम उपाय होते हैं (अय्यूब, 2018; मैडॉक्स, 2020)। उच्च प्रोफाइल मामलों ने डीपफेक के विनाशकारी प्रभाव को उजागर किया है। भारतीय पत्रकार राणा अय्यूब को उनके राजनीतिक टिप्पणी के बाद एक नक़ली पोर्नोग्राफिक वीडियो के साथ लक्षित किया गया था, जिससे धमकियाँ और ऑनलाइन उत्पीड़न हुआ (मैडॉक्स, 2020; अय्यूब, 2018)। इसी तरह, नैंसी पेलोसी (पेरिस और डोनोवन, 2019) और नोएल मार्टिन (पेरिस और डोनोवन, 2019) पर हुए डीपफेक हमले उनकी प्रतिष्ठा को नुक़सान पहुँचाने, उत्पीड़न और मानसिक तनाव का कारण बने। पीड़ितों को अक्सर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं, सामाजिक अलगाव, और पेशेवर नुक़सान का सामना करना पड़ता है (जैमन, 2020य मोलॉय, 2019; बेट्स, 2017)। डीपफेक ऑनलाइन स्थानों को मज़बूती से बढ़ावा देते हैं, जहाँ महिलाओं को वस्तुवादी और चुप कराया जाता है (वैन डेर नागेल, 2020; चेसनी और सिट्रोन, 2019a)। पीड़ितों के लिए मानसिक और सामाजिक परिणाम गंभीर होते हैं, जो अक्सर उन्हें एक ऐसे सिस्टम के ख़िलाफ़ असहाय छोड़ देते हैं,

जो उनकी रक्षा करने में विफल रहता है (मोर्ट, 2022; रॉयल, 2021)। डीपफेक शोषण को संबोधित करने के लिए मज़बूत क़ानूनी सुरक्षा, तकनीकी हस्तक्षेप और बढ़ी हुई जागरूकता की आवश्यकता है, ताकि महिलाओं का डिज़िटल स्थानों में शोषण रोका जा सके (चेसनी और सिट्रोन, 2019a)।

अनुसंधान कार्यविधि

यह अध्ययन डीपफेक प्रौद्योगिकी के साइबर सुरक्षा पर प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए वर्णनात्मक अनुसंधान कार्यविधि का उपयोग करता है, विशेष रूप से महिलाओं पर इसके अनुपातहीन प्रभाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए। वर्णनात्मक दृष्टिकोण का उपयोग डीपफेक प्रौद्योगिकी से जुड़े विकास, जोखिम और शमन रणनीतियों की व्यवस्थित रूप से जांच करने और दस्तावेज़ करने के लिए किया जाता है।

इस अनुसंधान के लिए डेटा मौजूदा साहित्य की व्यापक समीक्षा से एकत्र किया जाता है, जिसमें शैक्षिक लेख, साइबर सुरक्षा रिपोर्ट, क़ानूनी ढाँचे, और दस्तावेज़ित केस अध्ययन शामिल हैं। अध्ययन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी का संकलन करता है ताकि डीपफेक संबंधित साइबर ख़तरों और उनके लिंग आधारित प्रभावों की गहरी समझ प्रस्तुत की जा सके।

इसके अतिरिक्त, अनुसंधान वर्तमान तकनीकी और नीति उपायों का मूल्यांकन करता है जो डीपफेक ख़तरों को कम करने के लिए निर्देशित हैं। इसमें पहचानने के उपकरणों, क़ानूनी प्रतिक्रियाओं और व्यक्तिगत, संगठनात्मक और नीति स्तरों पर सुरक्षा उपायों का विश्लेषण किया जाता है। निष्कर्षों को गुणात्मक विश्लेषण के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है ताकि पैटर्न, उभरती प्रवृत्तियों और विभिन्न प्रतिकार उपायों की प्रभावशीलता को उजागर किया जा सके।

वर्णनात्मक दृष्टिकोण को अपनाकर, यह अध्ययन डीपफेक-संबंधित जोखिमों का संरचित अवलोकन प्रदान करने का लक्ष्य रखता है, जो डिज़िटल सत्यता की सुरक्षा और महिलाओं को दुर्भावनापूर्ण शोषण से बचाने के लिए निरंतर साइबर सुरक्षा विकास और नीति हस्तक्षेप की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

सुझाए गए सुरक्षा ढाँचे

डीपफेक ख़तरों का प्रभावी रूप से मुक़ाबला करने के लिए सुरक्षा रणनीतियाँ कई स्तरों पर लागू की जानी चाहिए :

1. **व्यक्तिगत स्तर :** डिज़िटल पदचिह्न की समीक्षा, मज़बूत गोपनीयता सेटिंग्स, मल्टी-फैक्टर प्रमाणीकरण, व्यक्तिगत मीडिया का सावधानीपूर्वक नियंत्रण, और डिज़िटल साक्षरता शिक्षा।
2. **संगठनात्मक स्तर :** व्यापक डीपफेक जागरूकता प्रशिक्षण, घटना प्रतिक्रिया प्रोटोकॉल, सामग्री सत्यापन प्रणालियाँ, कर्मचारी गोपनीयता सुरक्षा नीतियाँ, और नियमित सुरक्षा ऑडिट।

3. **नीति स्तर :** साइबर अपराध जांचों में अंतरराष्ट्रीय सहयोग, मानकीकृत सामग्री प्रमाणीकरण प्रोटोकॉल, प्लेटफॉर्म उत्तरदायित्व आवश्यकताएँ, पीड़ितों के लिए समर्थन तंत्र, और पहचान प्रौद्योगिकियों के लिए बढ़ी हुई अनुसंधान निधि।

भविष्य की चुनौतियाँ और अवसर

जैसे-जैसे डीपफेक प्रौद्योगिकी का विकास जारी है, कई चुनौतियाँ और अवसर साइबर सुरक्षा परिदृश्य को आकार देंगे। संश्लेषण गुणवत्ता में प्रगति, घटित की गई गणना आवश्यकताएँ, और पहचान से बचने में सुधार सुरक्षा उपायों के निरंतर अनुकूलन की आवश्यकता को जन्म देंगे। सामाजिक प्रभाव, जिसमें डिज़िटल मीडिया पर विश्वास, ऑनलाइन पहचान सत्यापन, लिंग-विशिष्ट सुरक्षा उपाय, डिज़िटल साक्षरता शिक्षा और सीमा पार प्रवर्तन चुनौतियाँ शामिल हैं, को सरकारों, प्रौद्योगिकी कंपनियों और नागरिक समाज के बीच समन्वित प्रयासों के माध्यम से संबोधित किया जाना चाहिए।

प्रौद्योगिकी में विकास और मज़बूत साइबर सुरक्षा रणनीतियों को एकीकृत करके, संगठन और व्यक्ति डीपफेक के हानिकारक प्रभाव को कम कर सकते हैं, और एक सुरक्षित और अधिक विश्वसनीय डिज़िटल वातावरण सुनिश्चित कर सकते हैं।

निष्कर्ष

डीपफेक प्रौद्योगिकी का साइबर सुरक्षा में ख़तरा एक जटिल समस्या उत्पन्न करता है, जो विशेष रूप से महिलाओं को अनुपातहीन रूप से प्रभावित करता है। जबकि तकनीकी समाधान लगातार अनुकूलित हो रहे हैं, एक समग्र दृष्टिकोण जिसमें व्यक्तिगत जागरूकता, संगठनात्मक नीतियाँ और विधायी ढाँचे शामिल हैं, प्रभावी शमन के लिए आवश्यक है। भविष्य के अनुसंधान को अधिक मज़बूत पहचानने के तरीक़ों के विकास पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए और डीपफेक-आधारित साइबर हमलों से निपटने के लिए वैश्विक सहयोग को मज़बूत करना चाहिए।

यह शोध इस बात को उजागर करता है कि डीपफेक प्रौद्योगिकी महिलाओं पर गहरा नुक़सान पहुँचाती है, जो शक्ति असंतुलनों को बढ़ाती है, शोषण, उत्पीड़न और नियंत्रण के माध्यम से। मौजूदा अध्ययन और लेखों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि डीपफेक एक उपकरण के रूप में कार्य करता है जिससे प्रभुत्व, वस्तुवादीकरण और लिंग आधारित हिंसा को बढ़ावा मिलता है। अपराधी इस प्रौद्योगिकी का उपयोग महिलाओं की पहचान पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए करते हैं, जिससे नक़ली सामग्री बनाई जाती है, जिसका उपयोग ब्लैकमेल, अपमान या प्रतिशोध के लिए किया जा सकता है।

इसके अलावा, डीपफेक प्रौद्योगिकी पहले से ही महिलाओं के लिए दुश्मन डिज़िटल परिदृश्य को और अधिक बढ़ावा देती है, जो ऑनलाइन उत्पीड़न, साइबर स्टॉकिंग और प्रतिरूपण को

बढ़ावा देती है। डिज़िटल प्लेटफॉर्म द्वारा दी गई गुमनामी अपराधियों को जवाबदेही से बचने का अवसर देती है, जिससे कई पीड़ितों के पास कोई उपाय नहीं रहता। इन ख़तरों की गंभीरता को देखते हुए, यह महत्त्वपूर्ण है कि मज़बूत क़ानूनी ढाँचे, तकनीकी सुरक्षा उपायों और डिज़िटल साक्षरता पहलों को लागू किया जाए ताकि डीपफेक से उत्पन्न जोखिमों को कम किया जा सके। इस समस्या को संबोधित करने के लिए नीति निर्माताओं, प्रौद्योगिकी कंपनियों और समाज को एक साथ मिलकर काम करना चाहिए ताकि महिलाओं को डिज़िटल शोषण से बचाया जा सके और एक सुरक्षित ऑनलाइन वातावरण सुनिश्चित किया जा सके।

❑

संदर्भ

1. Chesney, B., & Citron, D. (2021). *Deepfakes and the new disinformation war*. Harvard Law Review, 133(1), 1-30.
2. Chen, Y., & Li, Z. (2023). *The evolution of deepfake detection technologies*. Cybersecurity Journal, 15(2), 45-60.
3. Elish, K. (2023). *Social engineering and deepfake threats in the digital age*. Cyber Defense Review, 10(3), 101-120.
4. Goodfellow, I., Pouget-Abadie, J., Mirza, M., Xu, B., Warde-Farley, D., Ozair, S., Courville, A., & Bengio, Y. (2014). *Generative adversarial nets*. Advances in Neural Information Processing Systems, 27, 2672-2680.
5. Hao, M. (2023). *The challenge of deepfake authentication in cybersecurity*. Journal of Digital Security, 18(4), 75-90.
6. Kietzmann, J., Lee, L., McCarthy, I., & Kietzmann, T. (2023). *Deepfakes: Applications, risks, and countermeasures*. Business Horizons, 66(1), 23-39.
7. Kumar, R. (2023). *Strategic defenses against deepfake misinformation*. Information Security Journal, 20(1), 56-71.
8. Lyu, S. (2023). *AI-powered detection of deepfake content: Challenges and advancements*. IEEE Transactions on Information Forensics and Security, 18, 112-127.
9. Maras, M.-H., & Alexandrou, A. (2023). *Determining deepfake credibility in digital media*. Cybersecurity and Ethics Review, 9(1), 34-50.
10. Pope, T. (2022). *The impact of deepfake technology on corporate and personal security*. Journal of Risk Analysis, 25(2), 89-104.
11. Rao, P. (2023). *Policy responses to deepfake technology: A global perspective*. Technology Policy Review, 14(3), 119-138.
12. Yang, X., Zhang, L., & Chen, H. (2024). *The next frontier in deepfake*

detection: AI-driven solutions. Artificial Intelligence and Security, 22(1), 1-18.
13. https://www.sectigo.com/resource-library/what-deepfakes-mean-for-security
14. efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.diva-portal.org/smash/get/diva2:1880041/FULLTEXT01.pdf
15. extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://repository.stcloudstate.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=k1199&context=kmsia_zetds
16. https://www.researchgate.net/publication/382493119_Deepfake_Technology
17. https://blogs.iadb.org/igualdad/en/deepfakes-gender-based-violence-in-the-era-of-artificial-intelligence/
18. https://www.theparliamentmagazine.eu/news/article/how-sexually-explicit-deepfakes-undermine-democracy-and-womens-role-in-the-eu
19. https://www.cigionline.org/articles/women-not-politicians-are-targeted-most-often-deepfake-videos/
20. chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://scholar.umw.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=k1627&context=kstudent_research

सन्तोष खन्ना

नेक्रोफीलिया : मानसिक रोग अथवा अपराध?

दिसंबर, 2024 के छत्तीसगढ़ राज्य के उच्च न्यायालय ने एक चौंकाने वाला फैसला दिया है। यह एक ऐसा फैसले है जो समस्या के समाधान करने के स्थान पर उस में कई अनतुरित प्रश्न छोड़ गया है। उच्च न्यायालय ने इस में अभियुक्त को उसके एक विभत्स अपराध का दंड न दे कर उसे यह कह कर बरी कर दिया कि हमारी न्याय व्यवस्था में ऐसे अपराध के लिए दंड की कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं। दो व्यक्तियों ने एक नाबालिग लड़की का बलात्कार कर उसकी हत्या कर दी और बाद में उसके शव को भी नहीं बख्शा और इन दोनों अभियुक्तों में से नीलू नगेश नाम के अभियुक्त ने शव के साथ भी बलात्कार किया। प्रोसीक्यूटर ने अभियुक्त को इस अपराध के लिए दंड देने की दलील देते हुए कहा कि उसने पीड़िता के गरिमापूर्ण मरने के अधिकार का उल्लघंन किया है।

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता में बलात्कार संबंधी प्रावधानों का हवाला देते हुए कहा कि वह तभी लागू होते हैं जब पीड़िता जिंदा हो। शव के साथ बलात्कार एक विभत्स और जघन्य कृत्य है किन्तु भारतीय दंड संहिता की धारा 376 इस पर लागू नहीं होती है और न ही बाल यौन अपराध संरक्षण अधिनियम ही इस पर लागू होता है। अतः छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने नीलू नगेश नाम के उस अभियुक्त को इस अपराध से बरी कर दिया हालाँकि उसे दूसरे अपराधों के लिए दंड दिया गया था।

माना जाता है कि शव के प्रति यौन आकर्षण एक मानसिक रोग है जो दस लाख लोगों में से किसी एक व्यक्ति में होता है। यह भी हो सकता है कि इस बारे में वास्तविक आँकड़े सामने ही न आते हों। लेकिन अस्पतालों आदि में शवग्रहों में नियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध शिकायतें आती है कि उन्होंने शवों के साथ यौन संबंध बनाए।

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा नेक्रोफीलिया के कारण आरोपी को शव के साथ यौन संबंध बनाने के मामले में बरी करने के निर्णय के अलावा भी देश के कुछ उच्च न्यायालयों में इस प्रकार के मामले आते रहे हैं और अभियुक्तों को इस अपराध के लिए दंड नहीं दिया गया है। वर्ष 2015 के रंगराजू मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय में भी इस मामले में अभियुक्त को दंड नहीं दिया था। इस भयानक मामले में भी अभियुक्त ने एक युवती की हत्या कर दी थी और

उसके बाद उसके शव के साथ यौन संबंध बनाए थे। इस मामले में सत्र न्यायालय ने आरोपी को प्रथम दृष्टि में अपराधी घोषित किया और उसे हत्या और बलात्कार दोनों अपराधों के लिए दंड दिया गया। किंतु जब मामला अपील में कर्नाटक उच्च न्यायालय पहुँचा तो उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने दोषी के विरुद्ध हत्या का अपराध बरक़रार रखा किंतु उसके द्वारा शव के साथ बलात्कार के अपराध से मुक्त करते हुए उसे नैक्रोफीलिया का मामला माना।

अब तो सबको पता ही है कि नैक्रोफीलिया शब्द ग्रीक शब्द 'फिलिप्स' (प्यार) और 'नेक्रोस' (मृत शरीर) से व्युत्पन्न नैक्रोफिल्स शब्द से बना है जिसका अर्थ है शव के प्रति यौन आकर्षण। इसकी गुप्त प्रकृति और इस बारे में पीड़िता का शिकायत करने की स्थिति में न होने के कारण नैक्रोफीलिया के अधिकांश मामले तो प्रकाश में ही नहीं आते होंगे।

कर्नाटक उच्च न्यायालय के इस फैसले पर एक आलेख में विस्तृत विचार विमर्श किया गया है। छात्र लेखकों ने भारतीय दंड संहिता की सभी संबद्ध धाराओं का विश्लेषण किया है। सबसे पहले यहाँ बलात्कार संबंधी दो धाराओं 375 और 376 को देखते हैं। धारा 375 में बलात्कार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि --

क. धारा 375 में बलात्कार को एक संगीन अपराध माना गया है।

ख. जब कोई पुरुष किसी महिला के साथ उसकी इच्छा के ख़िलाफ़ उसकी सहमति के बिना, जबरदस्ती, ग़लत बयानी या धोखे से यौन संबंध बनाता है।

ग. जब कोई पुरुष किसी महिला से संभोग करता है जबकि वह नशे में हो या धोखा खा गई हो।

घ. जब कोई पुरुष किसी महिला के साथ संभोग करता है जब कि वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो।

ङ जब कोई पुरुष किसी महिला के साथ संभोग करता है जब कि उसे या किसी ऐसे व्यक्ति जिसे वह संबंधित हो, मृत्यु का भय दिखा कर सहमति ली हो तब वह बलात्कार कृत्य करता है।

धारा 376 में बलात्कार के लिए दंड का प्रावधान किया गया है। इस धारा में संशोधन भी किया गया है और बलात्कार के अपराध के लिए दंड का प्रावधान कठोर बना दिये हैं। बलात्कार के लिए कम से कम 7 साल की सज़ा का प्रावधान है साथ ही जुर्माना भी लगाया जा सकता है। इस धारा के अंतर्गत सज़ा की अवधि इस प्रकार है --

- 12 साल से कम उम्र की महिला के साथ बलात्कार करने पर कम से कम 20 साल की जेल, आजीवन कारावास, जुर्माना या मौत की सज़ा हो सकती है।
- 16 साल से कम उम्र की महिलाओं के साथ बलात्कार होने पर उन्हें 20 साल तक की या आजीवन कारावास का सामना करना पड़ सकता है।
- 16 साल से अधिक उम्र की महिलाओं के साथ बलात्कार होने पर उन्हें न्यूनतम 10 साल तक की जेल का सामना करना पड़ सकता है।

धारा धारा 376 के अंतर्गत आने वाले अपराध हिरासत में बलात्कार, गर्भवती महिला से बलात्कार, सामूहिक बलात्कार, पुलिस अधिकारी या सरकारी कर्मचारियों द्वारा बलात्कार है। धारा 376 के अंतर्गत अपराधों से समझौता नहीं किया जा सकता, ऐसा करने के किसी भी प्रयास को न्यायालय द्वारा ख़ारिज़ कर दिया जाएगा।

यद्यपि धारा 375 और 376 बलात्कार के अपराध और उसके लिए दंड का प्रावधान करती हैं किंतु इनको जानने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इन धाराओं में शव के साथ बलात्कार के बारे में किसी प्रकार का प्रावधान नहीं किया गया है।

अब भारतीय दंड संहिता, 1860 के स्थान पर भारतीय संसद ने एक नई संहिता बना दी है जिसका नामकरण किया गया है भारतीय न्याय संहिता, 2023। इस संहिता को पूरे भारतवर्ष में एक जुलाई, 2024 को लागू कर दिया गया है। इस नई संहिता में बलात्कार संबंधी प्रावधान धारा 63 और 64 में किए गए हैं। उन्हें भी यहाँ देख लेना समीचीन होगा।

बलात्कार की परिभाशा धारा 63 में दी गई है। बलात्कार को महिला की शारीरिक अखंडता और स्वायत्तता का गंभीर उल्लंघन माना गया है।

बलात्कार के मामले में कम-से-कम 10 साल की कठोर सज़ा हो सकती है। इस सज़ा को जीवन कारावास तक किया जा सकता है और उसके साथ जुर्माना भी लगाया जा सकता है। भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 63 भारतीय दंड संहिता की धारा 375 का एक रूप है हालाँकि अपवादों के संबंध में एक अंतर है।पहली भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अंतर्गत यह प्रावधान था कि किसी पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ यौन संबंध बलात्कार नहीं माना जाएगा। अब भारतीय न्याय संहिता में प्रावधान यह है कि किसी पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ यौन संबंध बलात्कार नहीं माना जाएगा अगर उसकी पत्नी की उम्र 18 साल से ज़्यादा हो।

भारतीय न्याय संहिता की धारा 64 बलात्कार जैसे गंभीर अपराधों के लिए सज़ा का प्रावधान करती है। इस धारा के अंतर्गत पुलिस अधिकारी, लोक सेवक या संस्थागत कर्मचारी जैसे पदों पर रहने वाले लोगों द्वारा किए गए बलात्कार से जुड़ी है। इस धारा के तहत कठोर कारावास और जुर्माने की सज़ा हो सकती है। इस धारा के अंतर्गत न्यूनतम सज़ा 10 साल की कठोर जेल है ज़रूरत पड़ने पर सज़ा जीवन भर तक बढ़ाई जा सकती है। इस धारा के तहत बलात्कार एक ग़ैर-जमानती अपराध है और बार-बार अपराध करने वाले को उम्र कैद हो सकती है।

महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध यौन अपराधों के लिए भारतीय न्याय संहिता, 2023 में बड़े विस्तार से बताया गया है और हर अपराध के लिए सज़ा भी कड़ी कर दी गई है। यौन अपराध संबंधी धाराएँ 63 से लेकर 73 तक कर दी गई है। धारा 70 सामूहिक बलात्कार से जुड़ी है यह धारा तब लागू होती है जब दो या दो से ज़्यादा लोग मिलकर किसी महिला से बलात्कार करते हैं यह एक गंभीर अपराध है इसके लिए कड़ी सज़ा का प्रावधान है अगर पीड़िता 18 साल से कम उम्र की लड़की है तो दोषियों को उम्र कैद या मौत की सज़ा हो सकती है। महिला के साथ गैंगरेप के मामले में उम्र कैद या कम से कम 20 साल की सज़ा हो सकती है।

यद्यपि भारतीय न्याय संहिता, 2023 में बलात्कार संबंधी अपराध के बारे में विस्तृत प्रावधान किए गए हैं किन्तु सच्चाई यही है कि शव के साथ बलात्कार के बारे में कोई क़ानूनी प्रावधान नहीं किया गया है जबकि नेक्रोफीलिया के मामले प्रायः सामने आते ही रहते हैं।

भारतीय दंड संहिता, 1860 में एक और धारा है 297 जिसके अंतर्गत कहा गया है कि जो कोई किसी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के इरादे से या किसी व्यक्ति के धर्म का अपमान करने के इरादे से या यह जानते हुए कि इससे किसी व्यक्ति की भावनाओं को ठेस पहुँचने की संभावना है या इससे किसी व्यक्ति के धर्म का अपमान होने की संभावना है किसी पूजा स्थल या किसी अन्य स्थान पर अतिचार करता है तो उसे भी एक वर्ष तक का दंड दिया जा सकता है और उस पर जुर्माना भी लगाया जा सकता है। इसी धारा को भारतीय न्याय संहिता, 2023 में धारा 301 में तबदील कर दिया गया है और इसमें भी शव के साथ यौन संबंध बनाए जाने को अपराध के रूप में शामिल नहीं किया गया है।

धारा 297 के अनुसार कब्रिस्तान में घुसना और शव को अपमानित करना अपराध है। ऐसी स्थिति में एक वर्ष की अवधि तक का कारावास का दंड दिया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है परंतु अगर इस कृत्य के पीछे किसी व्यक्ति की भावनाओं को ठेस पहुँचाना या धर्म का अपमान करने का इरादा नहीं है तो इसे अपराध नहीं माना जाएगा। भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 301 में भी ऐसा कुछ नहीं जो इसे अपराध की श्रेणी में रखें अतः यहाँ भी यह अपराध नहीं बनता है।

इस संबंध में यह भी ज्ञातत्व है कि उच्चतम न्यायालय ने परमानंद कटारा मामले में यह माना था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवित और मृतक, दोनों के सम्मान के लिए अधिकार को सुनिश्चित किया जा सकता है और इसके बाद रामजी मामले में भी इस तरह की पुष्टि की गई थी, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय में भी नैक्रोफीलिया मामलों में यह दलील दी गई थी कि यह मामला भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत आता है परंतु अभी तक किसी न्यायालय ने मैक्रोफीलिया को अपराध नहीं माना है।

इस विश्लेषण से यही पता चलता है कि यद्यपि नैक्रोफीलिया के कई मामले सामने आ रहे हैं और उच्च न्यायालय क्या उच्चतम न्यायालय तक भी मामले पहुँच गए हैं परंतु सभी न्यायालयों ने ऐसे मामलों में तीन बातें कही है कि ''शव के साथ यौन संबंध बनाना बहुत विभत्स कृत्य है, दूसरा, भारतीय न्याय व्यवस्था में ऐसे अपराध के लिए दंड देने की कोई व्यवस्था नहीं है न तो भारतीय दंड संहिता 1860 में और न ही नए क़ानून भारतीय न्याय संहिता, 2023 में। साथ ही न्यायालयों ने यह भी कहा है कि इस कुकृत्य को अपराध की श्रेणी में लाने के लिए संसद द्वारा समूचित क़ानून बनाया जाना चाहिए।''

भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के अंतर्गत किसी भी पुरुष, महिला या जानवर के साथ प्रकृति के विरुद्ध सभी स्वैच्छिक शारीरिक संभोग के तहत अप्राकृतिक यौन क्रिया के रूप में समझा जा सकता है लेकिन प्रावधान में इसके भीतर शव के साथ संभोग को विशेष रूप से सूचीबद्ध

नहीं किया गया है। इस धारा के अंतर्गत भी शव के साथ संभोग को अप्राकृतिक नहीं माना गया है। अब तो उच्चतम न्यायालय ने रंगराजू मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय के फैसले के विरुद्ध की गई अपील में कर्नाटक उच्च न्यायालय के फैसले को बरक़रार रखा है। यह फैसला उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश सुधांशु धूलिया और अहसानुल्लाह अमानुल्लाह की द्वि-सदस्यों वाली खंडपीठ ने 6 फरवरी, 2025 को दिया है। हालाँकि इस खंडपीठ के समक्ष एडीशनल एडवोकेट जनरल ने तर्क दिया था कि धारा 375(सी) में प्रयुक्त शरीर शव्द को मृत शरीर भी माना जाए और यदि कोई महिला सहमति नहीं दे सकने की स्थिति में होती है तो उसे बलात्कार माना जाता है और इसी आधार पर मृत शरीर भी सहमति नहीं दे सकने की स्थिति में माना जाए परंतु उच्चतम न्यायालय ने इन तर्कों को नहीं माना।

वास्तव में जहाँ जहाँ शव दफनाने जाने की प्रथा है वहाँ इस तरह के अपराध होनै की संभावना बढ़ जाती है। हिंदू जाति में शव दाहन की प्रथा के कारण इस समस्या का कम सामना करना पड़ता है परंतु हत्या के मामलों में हत्यारों द्वारा अथवा शवग्रह आदि में ऐसे मामले सामने आते रहते हैं अथवा सामने आते ही नहीं है।

इस मायने में कब्रिस्तानों में महिला शव सुरक्षित नहीं होते। यहाँ एक मामले का हवाला दिया जा रहा है। कुछ समय पहले कंबोडिया में एक मामले में चेन चियान नाम का एक 47-वर्षीय व्यक्ति एक लड़की के शव के साथ सैक्स के इरादे से उसके ताबूत में घुस गया था। जब गाँव वालों ने कब्र के बाहर निकले पैर को देखा तो उसे बाहर खींच कर निकाला। उस व्यक्ति ने पुलिस को बताया कि वह उस लड़की की शव यात्रा में शामिल हुआ था। उसने रात दस बजे से कब्र खोदना शुरू किया पर ताबूत छोटा होने के कारण वह उसके शव के साथ सेक्स नहीं कर पाया किंतु वह उस समय इतना थक गया था कि वह शव के ऊपर ही लेट गया था। पुलिस के अनुसार वह नशीली दावों का सेवन करता था और उसका दिमाग का संतुलन ख़ासा बिगड़ा हुआ था।

कुछ वर्ष पहले भारत के गाजियाबाद में एक निठारी कांड हुआ था। उस कांड में सुरेन्द्र कोली नाम के अभियुक्त पर बच्चियों की हत्या कर उनके शव के साथ यौन संबंध बनाने के आरोप लगे थे। वास्तव में सुरेंद्र कोली मनिंदर सिंह पंढेर के घर में नौकर था जहाँ अक्सर कॉल गर्ल्स आई थीं। कोली भी उनसे यौन संबंध बनाना चाहता था परंतु वह घर का नौकर होने के कारण ऐसा नहीं कर पाता था। ऐसे में वह अँधेरा होते ही वहाँ से गुजर रही छोटी-छोटी लड़कियों को पकड़ लेता और उनकी हत्या कर देता और उनके शव के साथ यौन संबंध बनाता था।

इन सब बातों को देखते हुए क़ानून में बदलाव करने की बहुत बड़ी ज़रूरत महसूस की जा रही है। अस्पतालों और मुर्दा घरों में युवतियों के शवों के साथ यौन संबंध की कई घटनाएँ सामने आ चुकी है लेकिन भारत में ऐसे मामलों के लिए कोई विशेष क़ानून नहीं बनाया गया है। नैक्रोफीलिया एक मनोविकार माना गया है। यह सही समय है कि केंद्र सरकार मृत व्यक्ति विशेष कर महिलाओं की गरिमा को बनाए रखने के लिए क़ानून में कोई नया प्रावधान बना कर

नेक्रोफिलिया को अपराध घोषित करे। नेक्रोफीलिया को अपराध मानते हुए यू.के., कनाडा, न्यूजीलैंड और दक्षिणी अफ्रीका में क़ानून बनाए गए हैं और हाल में पाकिस्तान में भी ऐसा क़ानून बनाया गया है। भारत की संसद को क़ानून के अनुसार यहाँ भी कोई प्रावधान बनाना चाहिए ताकि मृत शव की गरिमा को सुरक्षित रखा जा सके क्योंकि यह कोई छोटा मोटा अपराध नहीं है क्योंकि माना जाता है कि जिन व्यक्तियों में शवों के प्रति यौन आकर्षण होता है वह शव न मिलने की स्थिति में हत्या तक भी कर देते हैं।

❑

संदर्भ

1. नीलू नागेश मामले में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय का फैसला, दिसंबर, 2024
2. रंगराजू बनाम कर्नाटक राज्य, 2015
3. अभिषेक संजय और तान्या सारा जार्ज का आलेख, विधि सेंटर फॉर लीगल पोलिसी।
4. केतन अग्रवाल और रुबिका विज का आलेख 'कब्र से परे' भारत के क़ानून परिदृश्य में नेक्रोफीलिया को संबोधित करना, ऑक्सफोर्ड ह्यूमैन हब।
5. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 375
6. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 375 और 376
7. भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 63 एवं धारा 64
8. भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 63 से लेकर धारा 73 तक
9. भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 70
10. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 297
11. भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 301
12. परमानंद कटारा मामले में उच्चतम न्यायालय का फैसला
13. भारत का संविधान, अनुच्छेद 21
14. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 377
15. पुरवई ई-पत्रिका का संपादकीय, 20 जनवरी, 2025

डॉ. भूमिका शर्मा एवं सुश्री अनुरिता यादव

मासिक धर्म अवशोषक उत्पादों का पर्यावरणीय प्रभाव

मासिक धर्म दुनिया भर में लगभग 1.8 अरब व्यक्तियों को प्रभावित करता है, जिनमें लड़कियाँ, महिलाएँ, ट्रांसजेंडर पुरुष और ग़ैर-बाइनरी व्यक्ति शामिल हैं। सैनिटरी पैड के विकल्प के रूप में समाचार पत्रों, चिथड़ों, पत्तियों और छाल के उपयोग से 'संक्रमण' होता है और एचआईवी जैसे एसटीआई होने का ख़तरा बढ़ जाता है। पिछले कुछ वर्षों में मासिक धर्म उत्पादों की उपलब्धता, पहुँच और सुरक्षा से परे मासिक धर्म समानता की लहर देखी गई है। लागत प्रभावी अवशोषक सामग्री के निर्माण के लिए प्लास्टिक एक अनिवार्य घटक बन गया है। प्लास्टिक युग के आगमन ने इन स्वच्छता उत्पादों की संरचना को और बदल दिया, जिससे आराम मिला लेकिन स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव के बारे में चिंताएँ बढ़ गईं। ऊपरी पारगम्य परत में अब पॉलीप्रोपाइलीन या पॉलीइथाइलीन शामिल है, जबकि मानक पैड में अवशोषक कोर में लकड़ी का गूदा और अल्ट्रा-पतली वेरिएंट में, सुपर अवशोषक पॉलिमर (एसएपी) शामिल है। बेस बैरियर परत का निर्माण पॉलीथीन से किया गया है। वाणिज्यिक नैपकिन ब्रांड पैकेजिंग पर उत्पाद संरचना का ख़ुलासा न करके नियामक आवश्यकताओं में अंतर को उजागर करके समस्या में योगदान करते हैं। संभावित विकल्प, जैसे कि बायोडिग्रेडेबल और कम्पोस्टेबल विकल्प, साथ ही पुनः प्रयोज्य अवशोषक अंडरवियर, मासिक धर्म कप और पुनः डिज़ाइन किए गए कपड़े पैड, अधिक टिकाऊ विकल्प प्रदान करते हैं।

मासिक धर्म समानता में शैक्षिक पहल, प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल, मासिक धर्म स्वास्थ्य के प्रबंधन के लिए सुलभ और किफ़ायती विकल्प सुनिश्चित करना और मासिक धर्म के आसपास के कलंक को ख़त्म करना शामिल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ) तीन महत्त्वपूर्ण कार्यों की वकालत करता है। सबसे पहले, यह मासिक धर्म को केवल स्वच्छता के मामले के बजाय एक स्वास्थ्य चिंता के रूप में स्वीकार करने के महत्त्व पर ज़ोर देता है। इसमें रजोनिवृत्ति से पहले से लेकर रजोनिवृत्ति के बाद तक, किसी व्यक्ति के जीवन में शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पहलुओं पर इसके बहुमुखी प्रभाव को समझना शामिल है। दूसरे, यह सूचना, शिक्षा, उत्पाद, पानी, स्वच्छता सुविधाएँ, सहानुभूतिपूर्ण देखभाल और ऐसे माहौल को बढ़ावा देने सहित व्यापक मासिक धर्म स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सुनिश्चित करने के महत्त्व पर ज़ोर देता है। अंत में, यह इन प्रयासों को प्रासंगिक क्षेत्रीय योजनाओं में एकीकृत करने, तदनुसार बजट आवंटित करने और उनकी प्रभावशीलता की निगरानी करने का आह्वान करता है।

दुनिया की लगभग आधी आबादी अपने जीवन में लगभग तीस-चालीस वर्षों तक मासिक धर्म से गुजरती है। मोटे तौर पर, 500 मिलियन व्यक्ति मासिक धर्म उत्पादों और मासिक धर्म स्वास्थ्य के प्रबंधन के लिए पर्याप्त सुविधाओं तक पहुँच से वंचित हैं। शौचालय की अनुपलब्धता, पानी की अनुपलब्धता, समाज और परिवार में वर्जनाएँ इत्यादि, कुछ समस्याएँ हैं। इष्टतम मासिक धर्म स्वास्थ्य के मूलभूत घटकों में मासिक धर्म के प्रबंधन के लिए सुरक्षित, स्वीकार्य और भरोसेमंद आपूर्ति एवं मासिक धर्म सामग्री को बदलने के लिए गोपनीयता का प्रावधान सुरक्षित और निजी तौर पर धुलाई की सुविधाओं; और मासिक धर्म स्वच्छता के संबंध में सूचित विकल्प चुनने के लिए आवश्यक जानकारी शामिल हैं। हाल ही में, विषाक्त मासिक धर्म स्वच्छता उत्पादों के उपयोग का प्रश्न भी सामने आया है।

आधुनिक लागत प्रभावी और अवशोषक मासिक उत्पादों का विकास

मासिक धर्म कप या मेंस्ट्रुअल कप्स (जो योनि में फिट होने और मासिक धर्म के रक्त को इकट्ठा करने के लिए डिज़ाइन किए गए घंटी के आकार के उपकरण हैं) के लिए प्रारंभिक पेटेंट, 1880 के दशक के मध्य में दायर किए गए थे। हालाँकि, वे तब तक एक विशिष्ट उत्पाद बने रहे जब तक कि एकल-उपयोग प्लास्टिक के बारे में जागरूकता बढ़ने से उनके उपयोग में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई। अधिकांश मासिक धर्म कप 100 प्रतिशत मेडिकल-ग्रेड सिलिकॉन से तैयार किए जाते हैं, हालाँकि विकल्प रबर, लेटेक्स और इलास्टोमेर से बने होते हैं। उपयोगकर्ता आम तौर पर भंडारण के लिए कप को दोबारा लगाने या साफ़ करने से पहले हर चार से आठ घंटे में कप को हटाते और ख़ाली करते हैं।

वर्ष 1921 में कोटेक्स के पहले पैक की शुरुआत ने एक नए डिस्पोज़ेबल मासिक धर्म उत्पादों के युग की शुरुआत की। कोटेक्स ने चिकित्सा पट्टियों के लिए प्रथम विश्व युद्ध के दौरान विकसित एक अविश्वसनीय रूप से शोषक पौधे-आधारित सामग्री सेल्युकॉटन का उपयोग किया। नर्सों ने मासिक धर्म पैड के लिए इस सामग्री का पुनः उपयोग किया और यह चलन ज़ोर पकड़ गया। नर्तकों और एथलीटों जैसे शारीरिक रूप से सक्रिय व्यक्तियों के लिए, एक और उभरते उत्पाद -- टैम्पोन ने लोकप्रियता हासिल की। 1930 के दशक के मध्य में, पहला डिस्पोज़ेबल टैम्पोन बाज़ार में लॉन्च किया गया था। इन कॉम्पैक्ट, अवशोषक, बुलेट के आकार के कपास उपकरणों में आसान प्रविष्टि के लिए एक कार्डबोर्ड ऐप्लिकेटर और हटाने के लिए एक स्ट्रिंग जुड़ी हुई थी। 1930 के दशक के टैम्पोन आज दवा की दुकानों में उपलब्ध टैम्पोन से काफ़ी मिलते-जुलते थे, जिनमें आमतौर पर एक घनी सूती पट्टी या एक स्ट्रिंग से जुड़ी कागज जैसी सामग्री होती थी।

धीरे-धीरे, डिस्पोज़ेबल मासिक धर्म उत्पादों की लोकप्रियता और व्यापक उपयोग बढ़ गया क्योंकि अधिक महिलाएँ कार्यबल में शामिल हो गईं। इन उत्पादों ने कई दवा दुकानों में आसानी से उपलब्ध होने की सुविधा प्रदान की, जिससे महिलाओं को काम से घर तक इस्तेमाल किए गए कपड़ों को ले जाने की आवश्यकता समाप्त हो गई। इसके अतिरिक्त इन उत्पादों ने गोपनीयता

बनाए रखने, अपने शारीरिक कार्यों को दूसरों से छिपाने और निर्बाध काम सुनिश्चित करने में सक्षम बनाया।

सूसी ह्यूसन ने 1989 में नैट्राकेयर की स्थापना करके प्लास्टिक मुक्त अवधि की दिशा में अग्रणी क़दम उठाए। नैट्राकेयर बिना किसी प्लास्टिक घटकों के जैविक कपास से बने टैम्पोन और पैड का उत्पादन करता है। इन उत्पादों को पर्यावरण के अनुकूल बनाने के लिए डिज़ाइन किया गया है, क्योंकि वे सिंथेटिक सामग्री से मुक्त हैं और घर पर ही खाद बनाए जा सकते हैं, जिसका अर्थ है कि वे पर्यावरण को नुक़सान पहुँचाए बिना स्वाभाविक रूप से टूट सकते हैं।

तन्वी जौहरी ने कार्मेसी, पूरी तरह से प्राकृतिक और पूरी तरह से बायोडिग्रेडेबल सैनिटरी पैड लॉन्च किया जो मकई स्टार्च, बांस फाइबर और कम्पोस्टेबल बायो-प्लास्टिक से बना है। प्रीमियम पैड भी पूरी तरह से बायोडिग्रेडेबल बैग में आते हैं। साथी ही, एमआईटी (यूएस) स्नातकों तरुण बोथरा और क्रिस्टिन कैगेट्सू द्वारा शुरू की गई एक उद्देश्य-संचालित विनिर्माण कंपनी, केले के फाइबर का उपयोग करके सैनिटरी नैपकिन बनाती है। आनंदी, विवानियन, पुर्गैनिक्स, एवरटीन आदि भारत में कुछ अन्य भारतीय बायोडिग्रेडेबल ब्रांड हैं।

सेनेटरी पैड के आवश्यक घटक के रूप में प्लास्टिक का उपयोग

1960 के दशक के दौरान, रसायनज्ञ सक्रिय रूप से उन्नत प्लास्टिक और सिंथेटिक सामग्री के विकास में लगे हुए थे। तकनीकी प्रगति तेज़ी से आगे बढ़ी, जिससे निर्माताओं को अतिरिक्त बाज़ार तलाशने के लिए प्रेरित किया गया जहाँ वे इन नवीन सामग्रियों को एकीकृत कर सकें। पैड डिज़ाइन में आधार के रूप में पतले, लचीले, रिसाव-प्रूफ पॉलीप्रोपाइलीन या पॉलीइथाइलीन का उपयोग करना शुरू हुआ। स्टिकी-स्टफ तकनीक ने पैड को सीधे अंडरवियर से जोड़ने में सक्षम बनाया है। 1970 के दशक के अंत में, पैड को अपनी जगह पर सुरक्षित करने के लिए लचीले प्लास्टिक 'पंख' विकसित किए गए थे। डिज़ाइनरों ने तरल पदार्थ को दूर करने के लिए पतले पॉलिएस्टर फाइबर को अवशोषक कोर में एकीकृत किया। सुपर-शोषक सामग्रियों की प्रगति के साथ शोषक कोर पतले हो गए।

1920 के दशक के दौरान, जॉनसन एंड जॉनसन ने 'मोडेस' ब्रांड के सैनिटरी नैपकिन के लिए अपनी पत्रिका के विज्ञापनों में एक विवेकपूर्ण तरीक़ा अपनाया। उनमें विज्ञापनों के भीतर टाई शामिल थीं, जिन्हें महिलाएँ सावधानी से काट सकती थीं और फार्मेसी काउंटर पर सौंप सकती थीं। बदले में, उन्हें सैनिटरी नैपकिन का लगभग एक अचिह्नित बॉक्स मिलेगा, जिससे गोपनीयता बनी रहेगी और ऐसे उत्पादों को खुले तौर पर ख़रीदने से जुड़ी किसी भी शर्मिंदगी से बचा जा सकेगा।

1929 में टैम्पोन के पेटेंट में एक टेलीस्कोपिंग कार्डबोर्ड एप्लिकेटर ट्यूब का प्रदर्शन किया गया था, जबकि अन्य प्रस्तावों में अधिक अपरंपरागत सामग्रियों का सुझाव दिया गया था। हालाँकि, 1970 के दशक तक, प्लास्टिक मोल्डिंग तकनीक में प्रगति ने चिकने, पतले और लचीले एप्लिकेटर के निर्माण की अनुमति दी, जिन्हें टैम्पोन के लिए एकदम सही माना गया। अवशोषक कोर

में प्लास्टिक बिट्स को शामिल करने का उद्देश्य सघन रूप से पैक कपास को एक साथ रखने में मदद करना है। इसके अलावा, टैम्पोन में अक्सर पॉलिएस्टर या पॉलीप्रोपाइलीन से बने तार होते हैं, जो इन मासिक धर्म उत्पादों में प्लास्टिक के व्यापक उपयोग को दर्शाता है।

मासिक धर्म के दौरान उत्पादों को साफ़ रखने के साथ-साथ उन्हें बैग में रखने, डेस्क से टॉयलेट तक और फिर टॉयलेट स्टॉल से अपशिष्ट कंटेनर तक परिवहन की सुविधा की आवश्यकता होती है। इससे सभी उत्पादों के लिए प्लास्टिक रैपिंग का उपयोग आवश्यक हो गया। 2013 में, विवेकपूर्ण पैकेजिंग की पहल अपने चरम पर पहुँच गई जब कोटेक्स ने एक शांत आवरण वाले टैम्पोन का अनावरण किया, जिसे गोपनीयता बनाए रखने के लिए डिज़ाइन किया गया था, जो चुपचाप खोलने में सक्षम बनाता है।

एक मानक डिस्पोज़ेबल पैड में सिंथेटिक फाइबर या कपास की एक शीर्ष परत होती है, इसके बाद सतह से तरल को दूर करने के लिए सिंथेटिक फाइबर या कपास की एक छिद्रपूर्ण परत होती है। इसके बाद एक अवशोषक कोर है जिसमें डायपर में पाए जाने वाले सुपर-शोषक पॉलिमर होते हैं, इसके बाद प्लास्टिक से बनी वाटरप्रूफ बैकिंग शीट और एक चिपकने वाला होता है। टैम्पोन में सिंथेटिक फाइबर या कपास का एक पतला आवरण, कपास से बना एक अवशोषक कोर और आमतौर पर सिंथेटिक फाइबर या कपास से बनी एक स्ट्रिंग होती है।

टैम्पोन आमतौर पर प्लास्टिक रैपिंग में पैक किए जाते हैं और प्लास्टिक एप्लिकेटर के साथ आते हैं। इसके अलावा, कई टैम्पोन में उनके अवशोषक घटक में एक पतली प्लास्टिक परत शामिल होती है। टैम्पोन की डोरियाँ प्लास्टिक से बनी होती हैं और अधिकांश टैम्पोन का एप्लीकेटर भी प्लास्टिक से बना होता है। दूसरी ओर, पैड में और भी अधिक प्लास्टिक होता है, जिसमें लीक-प्रूफ बेस से लेकर द्रव अवशोषण और पैकेजिंग के लिए उपयोग की जाने वाली सिंथेटिक सामग्री तक शामिल है। डिस्पोज़ेबल मासिक धर्म पैड में आमतौर पर 90 प्रतिशत तक प्लास्टिक होता है, जबकि टैम्पोन में 6 प्रतिशत तक प्लास्टिक सामग्री होती है।

प्लास्टिक सेनेटरी पैड और टैम्पोन का पर्यावरणीय प्रभाव

मानव सिर, धड़ और अंगों जैसे क्षेत्रों पर एपिडर्मिस में आमतौर पर प्रोटीन केराटिन युक्त दानेदार कोशिकाओं की एक परत शामिल होती है, जो बाहरी तत्त्वों के ख़िलाफ़ अतिरिक्त सुरक्षात्मक बाधाओं के रूप में कार्य करती है। हालाँकि, योनि की श्लैष्मिक त्वचा और योनी के अंदरूनी भाग में दानेदार कोशिकाओं की इस परत का अभाव होता है। योनी और योनि की त्वचा शरीर के अन्य क्षेत्रों की त्वचा की तुलना में अधिक पारगम्य होती है। हाथों और चेहरे की त्वचा के विपरीत, योनि की श्लैष्मिक त्वचा में एक अभेद्य इंट्रासेल्युलर लिपिड आवरण का अभाव होता है, जो इसे पानी और घुलनशील प्रोटीन के लिए अधिक पारगम्य बनाता है। इसके अतिरिक्त, योनि अधिक हाइड्रेटेड होती है, जिससे पानी में घुलनशील पदार्थों के म्यूकोसल त्वचा में प्रवेश करने की संभावना बढ़ जाती है। मासिक धर्म उत्पाद योनी के साथ निरंतर संपर्क बनाए रखते हैं। बाहरी वस्तु और त्वचा के बीच अलगाव की कमी, जिसे रोड़ा कहा जाता है, त्वचा में प्रवेश

करने के लिए रसायनों की क्षमता को बढ़ाती है।

सैनिटरी पैड में प्लास्टिक की मौजूदगी योनि के माइक्रोफ्लोरा के संतुलन को बाधित करती है, जिससे संभावित रूप से मूत्र पथ के संक्रमण, चकत्ते और जननांग पथ के संक्रमण जैसी स्वास्थ्य समस्याएँ हो सकती हैं। पॉलीप्रोपाइलीन, पॉलीइथाइलीन, सुपर एब्जॉर्बेंट पॉलिमर (एसएपी) जैसी सामग्रियों की अहानिकर उपस्थिति के बावजूद, इनमें से अधिकांश घटक ग़ैर-बायोडिग्रेडेबल हैं। सुगंधित स्वच्छता उत्पादों में त्वचा में जलन पैदा करने और प्राकृतिक पीएच संतुलन को बाधित करने की क्षमता होती है।

योनि में डालने के लिए डिज़ाइन किए गए कुछ टैम्पोन में शोषक सामग्री के ऊपर एक प्लास्टिक आवरण होता है। यह नाज़ुक आवरण टैम्पोन के उपयोग के दौरान बरक़रार रहता है। इस पतले प्लास्टिक आवरण में योनि के वातावरण में प्लास्टिक माइक्रोफाइबर और अरबों नैनोप्लास्टिक्स छोड़ने की क्षमता होती है। मासिक धर्म उत्पादों में उपयोग की जाने वाली सामग्री उपयोगकर्ताओं को चिंता के रसायनों के संपर्क में ला सकती है। असुरक्षित सामग्रियों के उपयोग और अनुचित निपटान विधियों सहित अपर्याप्त मासिक धर्म स्वच्छता प्रथाओं से जुड़े पर्यावरण और स्वास्थ्य जोखिमों पर शिक्षा प्रदान करना महत्त्वपूर्ण है।

मासिक धर्म कप और डिस्क, जो आंतरिक रूप से पहने जाने वाली पुनः प्रयोज्य वस्तुएँ हैं, आम तौर पर लचीली सामग्री से तैयार की जाती हैं और पैड और टैम्पोन के विपरीत, मासिक धर्म प्रवाह को अवशोषित करने के बजाय एकत्र करने के लिए इंजीनियर की जाती हैं। कई उत्पाद पैकेज प्राथमिक सामग्री के रूप में केवल मेडिकल-ग्रेड सिलिकॉन को सूचीबद्ध करते हैं। हालाँकि कुछ कप स्पष्ट रूप से रंगीन होते हैं, जैसे कि लाल या काला, इस्तेमाल किए गए रंगों या रंगों के बारे में जानकारी अक्सर प्रकट नहीं की जाती है।

पीरियड-केयर बाज़ार में हाल ही में शामिल धोने योग्य, पुनः प्रयोज्य अंडरवियर को शोषक और रिसाव-प्रतिरोधी के रूप में डिज़ाइन किया गया है। हालाँकि, एक चिंता है कि इन उत्पादों में प्रति और पॉलीफ्लोरोएल्किल पदार्थ (पीएफएएस) हो सकते हैं।

2018 में केवल एक वर्ष में, अमेरिकियों ने 5.8 बिलियन टैम्पोन ख़रीदे, और मासिक धर्म के दौरान, वे आम तौर पर 5,000 से 15,000 पैड और टैम्पोन का उपयोग करते हैं। अफ़सोस की बात है कि इनमें से अधिकांश उत्पाद प्लास्टिक कचरे के रूप में लैंडफिल में पहुँच जाते हैं। मासिक धर्म उत्पाद यूरोप के समुद्र तटों पर पाए जाने वाले पांचवें सबसे प्रचलित एकल-उपयोग प्लास्टिक आइटम के रूप में रैंक करते हैं, जो मात्रा के मामले में प्लास्टिक की थैलियों और स्ट्रॉ दोनों को पीछे छोड़ते हैं।

सैनिटरी पैड और टैम्पोन जैसे ग़ैर-पुनर्चक्रण योग्य और ग़ैर-बायोडिग्रेडेबल डिस्पोज़ेबल मासिक धर्म उत्पादों का व्यापक उपयोग पर्यावरण के लिए एक महत्त्वपूर्ण ख़तरा पैदा करता है। अपने पूरे जीवनचक्र में, ये उत्पाद जल और भूमि प्रदूषण में योगदान करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप माइक्रोप्लास्टिक का प्रसार होता है और विभिन्न पर्यावरणीय और स्वास्थ्य जोखिम होते हैं। निम्न और मध्यम आय वाले देशों में, शहरीकरण के कारण सैनिटरी पैड की बढ़ती मांग, मासिक धर्म

अपशिष्ट के प्रबंधन में काफ़ी चुनौतियाँ पैदा करती है। कई व्यक्ति इन उत्पादों को शौचालयों या शौचालयों में जलाने, दफ़नाने या निपटाने का सहारा लेते हैं। दुर्भाग्य से, ऐसे निपटान तरीक़ों का हवा और मिट्टी की गुणवत्ता पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है और स्वच्छता प्रणाली बाधित होती है, जिससे प्रभावित समुदायों में जनता और अपशिष्ट प्रबंधन और स्वच्छता कार्यकर्ताओं के स्वास्थ्य को ख़तरा होता है।

निष्कर्ष

समकालीन समाज में प्लास्टिक सर्वव्यापी है, और मासिक धर्म भी इससे अलग नहीं है। 20वीं सदी के मध्य के बाद से, टैम्पोन और मासिक धर्म पैड का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा उनकी मौलिक संरचना में अलग-अलग डिग्री के प्लास्टिक को मिलाकर तैयार किया गया है, अक्सर उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाने के उद्देश्य से।

औसत महिला लगभग 40 वर्षो तक मासिक धर्म का अनुभव करती है, मासिक रक्तस्राव लगभग पांच दिनों तक रहता है, जो पूरे जीवनकाल में लगभग 2,400 दिन होता है। नतीज़तन, इस दौरान जमा हुए मासिक धर्म द्रव को प्रबंधित करने की आवश्यकता होती है। पश्चिमी दुनिया में, यह आमतौर पर टैम्पोन या पैड द्वारा अवशोषित हो जाता है, जिसे थोड़े समय के उपयोग के बाद कूड़े में फेंक दिया जाता है। पूर्वी दुनिया में, कुछ मामलों में पैड, मासिक धर्म कप या टिकाऊ विकल्पों का उपयोग किया जाता है। दुर्भाग्य से, एक अरब से अधिक ग़ैर-अपघटनीय सैनिटरी नैपकिन के सीवेज सिस्टम, जल निकायों और लैंडफिल को अवरुद्ध कर रहे हैं। वाणिज्यिक पैड और टैम्पोन में 90 प्रतिशत प्लास्टिक होता है, और इन्हें क्लोरीन से ब्लीच भी किया जाता है।

हमें अपने मासिक धर्म और स्त्री-देखभाल उत्पादों के लेबल पर उतना ही ध्यान देना चाहिए जितना हम अपने द्वारा उपभोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थों के लेबल पर देते हैं। मासिक धर्म उत्पादों में अवयवों से जुड़े जोखिमों का व्यापक मूल्यांकन करने के लिए अतिरिक्त डेटा की आवश्यकता है। निर्माताओं को जो प्रारंभिक क़दम उठाना चाहिए, वह ग़ैर-एप्लिकेटर टैम्पोन, कार्डबोर्ड एप्लिकेटर, या पुनः प्रयोज्य एप्लिकेटर बेचकर टैम्पोन से प्लास्टिक के तारों को ख़त्म करना है। पारंपरिक डिस्पोज़ेबल मासिक धर्म उत्पादों के कई विकल्पों ने लोकप्रियता हासिल की है। पुनः प्रयोज्य पैड, जो सदियों पुरानी तकनीक का एक उन्नत संस्करण है, ने ध्यान आकर्षित किया है। इसी तरह, मासिक धर्म कप, एक और प्राचीन पद्धति, ने लोकप्रियता में पुनरुत्थान का अनुभव किया है। इसके अतिरिक्त, कुछ कंपनियाँ मासिक धर्म को अवशोषित करने वाले अंडरवियर विकसित कर रही हैं, जिन्हें धोया और पुनः उपयोग किया जा सकता है, जबकि अन्य कंपनियाँ मासिक धर्म के दृश्य संकेतों से जुड़े पारंपरिक कलंक को चुनौती देते हुए, अपने मासिक धर्म चक्र के दौरान मुफ़्त रक्त स्राव का विकल्प चुनती हैं। पुनः प्रयोज्य और प्लास्टिक-मुक्त विकल्पों को अपनाने को प्रोत्साहित करना लंबे समय में सरकारों के लिए अधिक लागत प्रभावी साबित होगा। अधिक सामाजिक और पर्यावरण के प्रति जागरूक भविष्य की दिशा में आगे बढ़ने

के लिए मासिक धर्म से जुड़े कलंक को संबोधित करना महत्त्वपूर्ण है।

28 मई को मासिक धर्म स्वच्छता दिवस की प्रत्याशा में, वैश्विक स्तर पर मासिक धर्म स्वास्थ्य और स्वच्छता का जश्न मनाने वाला दिन, यह पेपर स्वास्थ्य और पर्यावरण पर प्लास्टिक आधारित सैनिटरी उत्पादों के दुष्प्रभावों के बारे में जागरूकता बढ़ाने का एक छोटा सा प्रयास है।

❑

संदर्भ

1. https://www.linkedin.com/pulse/hidden-costs-harm-environment-caused-sanitary-pads-vyas-he-him-/.
2. https://evolveessential.com/Blog/Effect-of-plastic-based-sanitary-pads-on-environment-and-women-health.
3. https://www.thethirdpole.net/en/culture/sanitary-pads-environmental-crisis/.
4. https://www.deccanherald.com/opinion/menstrual-hygiene-matters-for-ecology-1226108.html.
5. https://timesofindia.indiatimes.com/life-style/health-fitness/health-news/a-sanitary-pad-doesnt-disclose-ingredients-know-what-goes-inside-it/articleshow/65354742.cms.
6. https://obgyn.onlinelibrary.wiley.com/doi/10.1111/1471-0528.17668.
7. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1945842, 4 Aug. 2023.
8. https://www.hindustantimes.com/fitness/plastic-based-sanitary-pads-are-not-only-harmful-to-the-environment-but-also-your-body/story-Kk4wrI6QOyJCkP7bwEh0rI.html.
9. https://friendsoftheearth.uk/sustainable-living/plastic-periods-menstrual-products-and-plastic-pollution.
10. https://journals.sagepub.com/doi/10.1177/0971521518811169.
11. https://www.nationalgeographic.com/environment/article/how-tampons-pads-became-unsustainable-story-of-plastic.
12. https://www.medscape.com/viewarticle/915809?form=fpf.
13. https://www.cdc.gov/hygiene/personal-hygiene/menstrual.html.
14. https://cen.acs.org/business/consumer-products/period-product-ingredients/100/i37.
15. https://pubs.rsc.org/en/content/articlelanding/2022/en/d1en00755f.

डॉ नीमा कमर एवं नसीमुद्दीन खान

साइबर अपराध का सामाजिक प्रभाव

साइबर अपराध एक ऐसा अपराध है जिसमें कंप्यूटर और नेटवर्क शामिल होता है साइबर अपराध में कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के ज्ञान का दुरुपयोग क़ानून विरोधी और अनैतिक कार्यों के लिए किया जाता है ईसमे कंप्यूटर तकनीकी से संबंधित प्रतिभावान् व्यक्ति कंप्यूटर का दुरुपयोग करके विभिन्न प्रकार के डाटा और सामग्री को अवैध और अनैतिक व अनाधिकृत रूप से इसका प्रयोग करते हैं।

साइबर अपराध का व्यक्तियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिसके परिणाम स्वरूप वित्तीय नुक़सान, पहचान की चोरी, भावनात्मक आघात और प्रतिष्ठा को नुक़सान होता है। आधुनिक युग में स्पैम, ईमेल, हैकिंग, फिशिंग, वायरस फैलाने सॉफ्टवेयर, प्राइवसी, फर्जीवाड़ा, बैंक काल, सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर अफ़वाह फैलाने, साइबर बुलिङ्ग, जैसी साइबर अपराध पूरे विश्व के लोगों के सामने एक गंभीर समस्या बन गई है जिससे मानवीय जीवन को भयावह बना दिया गया है।

हमारे द्वारा डिज़िटल जीवन के प्रबन्धन में मामूली-सी ग़लती या लापरवाही साइबर अपराधियों के लिए दरवाज़े खोल सकती है। इंटरनेट ऑफ़ थिंग्स, क्लाउड कम्प्यूटिंग, आर्टफिशल इंटेलीजेंसी और 5जी जैसी सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग बढ़ने के साथ-साथ देश के लिए मज़बूत साइबर सुरक्षा नीति लाई गई है।

21वीं सदी में साइबर जासूसी, साइबर अपराध, आतंकवाद और युद्ध जैसे बढ़ते ख़तरे के साये में साइबर दुनिया को सुरक्षित बनाना आज विश्व के सामने एक बड़ी चुनौती बन गया है। वर्तमान में इंटरनेट उपभोक्ताओं के बढ़ने के साथ-साथ साइबर अपराध निरंतर बढ़ रहे हैं।

साइबर अपराध, स्पैम, ईमेल, फिशिंग, वायरस फैलाना, सॉफ्टवेयर प्राइवसी, फर्जी बैंक कॉल, सोशल नेटवर्किंग, साइट्स पर अफ़वाह फैलाना, साइबर बुलिङ्ग सभी साइबर अपराधों से संबंधित प्रावधान सूचना प्रौद्योगिकी क़ानून 2000 के अंतर्गत राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2013 जैसे :- सोशल इंजीनियरिंग फर्जीवाड़ा, सी.वी.वी., ओ.टी.पी. शेरिंग फर्जीवाड़ा, यू.पी.आई. फिशिंग फर्जीवाड़ा रीक्वेस्ट मनी, क्यू आर कोड, लिंक के माध्यम, लोटरी सिस्टम, अनलाइन नौकरी फर्जीवाड़ा आदि।

साइबर अपराध, स्पैम, ईमेल, फिशिंग, वायरस फैलाना, सॉफ्टवेयर प्राईवेसी, फर्जी बैंककाल, सोशल नेटवर्किंग, साइट्स पर अफ़वाह फेलाना, साइबर बुलिङ्ग, भारतीय दंड संहिता में साइबर अपराधों से संबंधित प्रावधान, सूचना तकनीकी क़ानून 2000 के अंतर्गत नई राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा

नीति 2013 जैसे : सोशल इंजीनियरिंग फर्जीवाड़ा, c.v.v./OTP, फर्जीवाड़ा यू.पी.आई. फर्जीवाड़ा आदि।

Review of literature साहित्य की समीक्षा

साइबर अपराध एक तेज़ी से बदता हुआ डिज़िटल अपराध है और तकनीकी की तेज़ी से होती प्रगति के साथ क़ानून पिछड़ रहा है। साइबर अपराध से निपटने के लिए साइबर अपराध क़ानून की भूमिका एक चुनौती है एस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया गया। साइबर अपराध से निपटने के लिए साइबर अपराध क़ानून में दिए गए प्रावधानों पर ज़ोर दिया गया है। साइबर अपराध से कुशलतापूर्वक निपटने के लिए क़ानून पर आधारित "व्यवस्थित समीक्षा और मेटा विश्लेषण के लिए पसंदीदा रेपोर्टिंग आइटम" का प्रयोग करके एक व्यापक साहित्य समीक्षा करता है तकनीकी और क़ानूनी ढाँचे दोनों में अधिकांश उन्नत देशों में क़ानून का विश्लेषण करता है। इसके बाद सात डेटाबेस में ख़ोज की गई, जिसमें एसीएम डिज़िटल लाइब्रेरी, एमराल्ड है। ऑनलाइन परोककवेस्ट साइंस डायरेक्ट सकोपेस और वेस्ट लॉ एशिया शामिल थे। शुरू में पाँच सौ अड़तालीस लेख प्राप्त किए गए और उनमें से 72 मानदंडों को पूरा किया गया और समीक्षा की गई साइबर अपराध के बढ़ने से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए एक व्यापक क़ानूनी ढाँचे में सुधार के लिए भाविष्य के अनुसंधान दशाओं पर प्रकाश डालती है।

उद्देश्य

- साइबर अपराध व साइबर सुरक्षा नीति के माध्यम से विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त करना।
- समाज में बड़ते अपराधों से किस तरह सुरक्षित रहा जाए।

प्रस्तावना

यह शोध पत्र साइबर अपराध के अध्ययन में उपयोग की जाने वाली मौज़ूदा ढंग से विकसित सामग्री और उसमें सुधार करने के उद्देश्य से तैयार किया गया है। साइबर अपराधियों की व्यापकता के आधार पर एक ऐसा अपराध है जिसमें कंप्यूटर का उपयोग अनलाइन अपराध जैसे : हैकिंग, फिशिंग, स्पैममिंग, आदि करने के लिए किया जाता है। सही अर्थों में देखा जाये तौ किसी के कंप्यूटर से उसकी निजी जानकारी निकाल लेना या चोरी कर लेना और उसका ग़लत तरीक़े से इस्तेमाल करने को ही साइबर क्राइम कहते हैं। अगर साइबर क्राइम बड़ा रूप ले लेता है तब वह साइबर आतंकवाद कहा जाता है। साइबर अपराध के अंदर की निजी जानकारी चुराने के अलावा दस्तावेज़ या डाटा चोरी, धोखाधड़ी, बाल अश्लीलता, और नफ़रत अपराध इस तरह के अपराध हैं इन्हें हम साइबर अपराधी कहते हैं।

ये सभी साइबर अपराधी कंप्यूटर इंटरनेट टेक्नॉलजी का इस्तेमाल करके दूसरे व्यक्तियों की जानकारी हम चोरी कह सकते हैं। इन्हे हम hackers या crackers कह सकते हैं। crackers का काम पासवर्ड तोड़ना है।

hackers क्राइम करने के लिए कंप्यूटर का इस्तेमाल करते हैं। इसी को हम साइबर क्राइम कहेंगे। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी आज हमारे दैनिक जीवन में एक अंग बन गया है। इसने हमारे जीवन में दोस्तों के साथ जुड़ने नौकरी ख़ोजने, शादी करने, जीवन साथी ख़ोजने, व्यवसाय चलाने, शॉपिंग करने, गेम खेलने के तरीक़ों को बदल दिया है। ब्रॉड बैंड और स्मार्ट फ़ोन की सस्ती उपलब्धता के बाद लगभग हर किसी की पहुँच साइबर स्पेस तक हो गयी है जो दुनिया भर में लगभग करोड़ों ऑनलाइन उपयोगकर्ताओं को जोड़ता है।

इससे हमें आर्थिक नुक़सान, प्रतिष्ठा का नुक़सान, मानसिक उत्पीड़न आदि हो सकता है। कुछ समय तक पहले जिन आकड़ों सूचनाओ और तथ्यों को सुरक्षित रखने के लिए कार्यालयों में हज़ारों फाईलें रखी जाती थीं वही आज हम कंप्यूटर की सहायता से उन फाईलस को हम कंप्यूटर में एक दूसरे से इस तरह से जोड़कर रखा जा सकता है।

जब कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के ज्ञान का दुरुपयोग क़ानून विरोधी अनैतिक कार्यों के लिए किया जाता है तब ऐसे व्यवहार को हम साइबर अपराध कहते हैं।

प्रकार

1. फिशिंग : जिसमें यूजर को फ्रॉड मेल भेज कर बेवक़ूफ़ बनाया जाता है और उसकी व्यक्तिगत जानकारी को चुराने का प्रयास किया जाता है।

2. साइबर बुलिङ्ग : सोशल मीडिया साइट्स पर अशोभनीय कमेंट करना, इंटरनेट के माध्यम से धमकियाँ देना, किसी का मज़ाक बनाना जिससे वह व्यक्ति परेशान हो। इंटरनेट के माध्यम से किसी दूसरे को शर्मिंदा करना। इसके शिकार हमेशा बच्चे और नये-नये यूजर इसका शिकार होते है।

3. child pornography बाल अश्लीलता : इस प्रकार के अपराध में अपराधी ज़्यादातर चैट रूम का उपयोग करते हैं। नए लोग और बच्चों को इसकी समझ नहीं होती इसी वजह से बच्चों से दुर्व्यवहार किया जाता है। उन्हे डराया धमकाया जाता है अश्लीलता के लिए उकसाते हैं। इस अपराध के शिकार बच्चे, लड़कियाँ ज़्यादा शिकार होते हैं।

4. spamming सपमिनग : इस प्रकार के अपराध में उपयोग करता को कई प्रकार से ईमेल आते हैं जिसमें ऐसे ईमेल शामिल होते हैं जो सिर्फ़ कंप्यूटर को नुक़सान पहुँचते हैं। इस ईमेल से कंप्यूटर में ख़राबी आ जाती है। यह तब होता है जब यूज़र मेल को ओपन करके उसमें दिए हुए लिंक पर क्लिक करता है तो इससे उनके सिस्टम में वायरस ऑटोमैटिकली डाउनलोड हो जाते है।

Theft चोरी किसी की जानकारी या सामग्री चुराना ये अपराध तब होता है जब कोई व्यक्ति किसी कॉपीराइट लॉ का उल्लंघन या violation करता है जैसे : म्यूजिक, मूवीज़, गेम्स, और सॉफ्टवेयर को डाउनलोड करना,। ऐसे हम देखे तो मालूम होता है कि privacy websites है जो डिज़िटल कंटेन्ट ओनर की अनुमति के बिना डाउनलोड करते हैं।

Fraud bank call फर्जी बैंक काल

बैंक उपभोक्ता को फैक काल करके उनसे उनकी बैंक डीटेल पूछा जाता है इससे ज़्यादातर क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड, की डीटेल माँगी जाती है ताकि वह कस्टमर के बैंक ख़ाते में से पैसे चोरी कर सके। उपभोक्ता पर दबाव बनाने के कई प्रकार की चेतावनी दी जाती है। जैसे : जानकारी न देने पर उनका ख़ाता बंद कर दिया जाएगा या ख़ाते से बैलन्स काट दिया जाएगा। इत्यादि

साइबर क्राइम से कैसे बचे

1. किसी भी वेबसाईट पर अपनी पर्सनल डीटेल शेयर न करे केवल वेरीफाइड साइट्स पर ही करें।
2. किसी भी सॉफ्टवेयर या एप को डाउनलोड करने से पहले कन्फर्म करने की आप कुछ ग़लती तो नहीं कर रहे हैं।
3. जहाँ तक हो सके अपनी पर्सनल इनफार्मेशन को अनलाइन पब्लिश करने से बचे।
4. कोई भी अनलाइन स्कीम जिसमें पैसे जीतने और प्राइज़ मिलने की बात हो तो उसके लालच में न पड़े और बिल्कुल भी विश्वास न करें।
5. हमेशा अपने इंटरनेट ब्राउजर,क्राइम क्रोम, फायर फॉक्स ओपेरा जो भी इस्तेमाल करते हैं। उसे अपडेट करके रखे फ्री वाईफाई इस्तेमाल करने से बचे और हमेशा अपने वाईफाई accounts के लिए सिक्युर पासवर्ड का इस्तेमाल करें।

साइबर अपराध रोकने के सुझाव

- सोशल इंजीनियरिंग सी.वी.वी., ओ.टी.पी., के लिए सुझाव :
- बैंक कभी भी एटीएम नंबर, सी.वी.वी., ओ.टी.पी., नंबर की गोपनीय जानकारी की मांग नहीं करता।
- व्हाट्सअप मैसेज़ फ़ोन या अन्य सोशल मीडिया के द्वारा कभी भी किसी को एटीएम नंबर सी.वी.वी., ओ.टी.पी., इत्यादि जानकारी को साझा न करे ।
- ईमेल आई.डी. को साझा नहीं किया जाना चाहिए क्यूँकि इसका उपयोग कर साइबर अपराधी इंटरनेट बैंकिंग को एकटीवेट कर ख़ाते में उपलब्ध राशि को हस्ताक्षरित कर सकते हैं।

यू.पी.आई. फिशिंग फर्जीवाड़ा के सुझाव

कोई भी लिंक या ओ.टी.पी. को किसी नंबर पर फॉरवर्ड न करें। कभी भी कस्टमर केयर अधिकारी का नंबर गूगलसर्च पर प्राप्त न करें। इस कार्य हेतू एयरलाइंस / ई-कॉमर्स कंपनी की आधिकारिक वेबसाईट का ही इस्तेमाल करें।

सोशल मीडिया प्लाटफार्मस का उपयोग कर किए जाने वाले वित्तीय फर्जीवाड़ा पर सुझाव

अपने प्रोफाइल के प्राइवेसी सेटिंग से मी फ्रेंड्स ओनली का चयन करें। फेसबुक, मैसेंजर

इत्यादि से जब भी कोई मांग करे तो इसकी सघन जांच संबंधित व्यक्ति से मिलकर या उसके निजी मोबाइल फ़ोन पर कॉल करने के पश्चात् ही पैसे का हस्तांतरण करें। अपने अकाउन्ट से संबंधित आईडी / पासवर्ड को मज़बूत रखे (अपना मोबाइल नंबर नाम इत्यादि कमज़ोर पासवर्ड है)।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग कर किए जाने वाले अन्य अपराध पर सुझाव

यह सुनिश्चित करें कि आपकी निजी जानकारी फ़ोटो, वीडियो, इत्यादि तक केवल आपके मित्रों की ही पहुँच हो। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर ऑनलाइन लोगों से दोस्ती करने से बचे।

साइबर बुलिङ्ग (धमकी देना) पर सुझाव

अपने बच्चों को इस बात की जानकारी दे कि साइबर बुलिङ्ग एक दंडनीय अपराध है, ताकि न ही वे साइबर बुलिङ्ग करे और नहीं इसका शिकार बने।

संवेदनशील कमेंट्स मैसेज़ और फ़ोटो इत्यादि के बारे में अवश्य रिपोर्ट करे तथा संबंधित सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म से उसे हटाने का अनुरोध करें। इसके अलावा किसी अनचाहे फ्रेंड को अनफ्रेंड करने के साथ साथ हमेशा के किए ब्लॉक करे ताकि वह पुनः आपकी प्रोफाइल तक पहुँच हासिल न कर सके।

साइबर सटकिनग (लगातार पीड़ित करना) पर सुझाव

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म निजी जानकारी, फ़ोटो, वीडियो, इत्यादि साझा करते समय सावधान रहे। ध्यान रहे इन जानकारियों तक सिर्फ़ आपके विश्वसनीय लोगों की ही पहुँच हो।

सोशल मीडिया द्वारा प्रदत प्राइवेसी एंड सिक्युरिटी सेटिंग का अवलोकन करे एवम् इसे मी फ्रेंड्स ओनली तक शामिल रखे।

Review of literature साहित्य की समीक्षा

साइबर अपराध एक तेज़ी से बदलता हुआ डिज़िटल अपराध है और तकनीकी की तेज़ी से होती प्रगति के साथ क़ानून पिछड़ रहा है। साइबर अपराध से निपटने के लिए साइबर अपराध क़ानून की भूमिका एक चुनौती है। इस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया गया। साइबर अपराध से निपटने के लिए साइबर अपराध क़ानून में दिए गए प्रावधानों पर ज़ोर दिया गया है। साइबर अपराध से कुशलतापूर्वक निपटने के लिए क़ानून पर आधारित "व्यवस्थित समीक्षा और मेटा विश्लेषण के लिए पसंदीदा रेपोर्टिंग आइटम" का प्रयोग करके एक व्यापक साहित्य समीक्षा करता है तकनीकी और क़ानूनी ढाँचे दोनों में अधिकांश उन्नत देशों में क़ानून का व्यवस्थित ढाँचे दोनों में अधिकांश उन्नत देशों में क़ानून का विश्लेषण करता है। इसके बाद सात डेटाबेस में ख़ोज़ की गई, जिसमें एसीएम डिज़िटल लाइब्रेरी, एमराल्ड, हैन ऑनलाइन परोककवेस्ट साइंस डायरेक्ट सकोपेस और वेस्टलॉ एशिया शामिल थे। शुरू में पाँच सो अड़तालीस लेख प्राप्त किए गए और

उनमें से 72 मानदंडों को पूरा किया गया और समीक्षा की गई साइबर अपराध के बढ़ने से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए एक व्यापक क़ानूनी ढाँचे में सुधार के लिए भविष्य के अनुसंधान दशाओं पर प्रकाश डालती है।

निष्कर्ष

आधुनिक युग में जहाँ समाज के हर पहलू को सकारात्मक रूप से प्रभावित किए हैं वहीं साइबर अपराध में समाज के सामने एक वैश्विक समस्या सामने आई है जिसका समाधान अति आवश्यक है। हालाँकि साइबर अपराध का स्वरूप इतना एकांकी और अज्ञात होता है कि इनसे संबंधित वास्तविक अपराधों को ख़ोज लेना एक कठिन समस्या है। साइबर अपराध के विरुद्ध यदि प्रारम्भिक स्तर पर ही पर्याप्त कार्यवाही नहीं की जाती है तो मानवधिकारों और मानवीय मूल्यों का हनन होने से समाज में विघटनकारी मनोवृत्तियों का तेज़ी से विकास होने लगेगा। यह एक ऐसी दशा है जिसमें भावी समाज का संपूर्ण जीवन एक बड़े ख़तरे में रह सकता है।

❑

संदर्भ

1. Jain Rohit Arvind (2018) cyber law publishing ISBN : 109789387905726
2. Khetra Pal Puja, khetra pal B.S. IT Act, 2000
3. The digital personal data Protection Act 2023
4. Chander Harish, Cyber laws and IT Protection
5. Haider, D., & Jaishanker, k 2011 cyber crime and the victimization of women law, Rights and regulation

प्रोफेसर (डॉ.) प्यारेलाल आदिले

शिक्षा के अधिकार अधिनियम का क्रियान्वयन : एक अध्ययन

शिक्षा किसी भी समाज की प्रगति का आधार होती है। भारत सरकार ने वर्ष 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) लागू किया, जिससे 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का संवैधानिक अधिकार मिला। यह अध्ययन शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन की प्रक्रिया, इसकी चुनौतियों और प्रभावों का विश्लेषण करता है। अधिनियम के तहत सरकारी एवं निजी विद्यालयों में आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग (EWS) और पिछड़े वर्गों (Disadvantaged Groups) के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित किया गया है। अध्ययन में यह देखा गया कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में इस क़ानून के प्रभाव में अंतर है। शहरी क्षेत्रों में निजी विद्यालयों में दाख़िले की जागरुकता अधिक है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी आधारभूत संरचना की कमी, प्रशिक्षित शिक्षकों की अनुपलब्धता, और सामाजिक आर्थिक कारकों के कारण इस अधिनियम का पूर्ण लाभ बच्चों को नहीं मिल पा रहा है। इसके अतिरिक्त, माता-पिता और समाज में शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण, सरकारी योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन, और शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने की चुनौतियाँ भी अध्ययन के केंद्र में हैं। अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम ने प्रारंभिक शिक्षा में साक्षरता दर को बढ़ाने में योगदान दिया है, किंतु इसे प्रभावी रूप से लागू करने के लिए शिक्षा नीतियों में सुधार, संसाधनों की उपलब्धता और प्रशासनिक जवाबदेही की आवश्यकता है।

1.1 शिक्षा का महत्त्व एवं समाज में इसकी भूमिका : शिक्षा किसी भी समाज के विकास की रीढ़ होती है। यह न केवल व्यक्ति के बौद्धिक, सामाजिक और आर्थिक विकास में सहायक होती है, बल्कि समाज में समानता, जागरूकता और समृद्धि को भी बढ़ावा देती है। एक शिक्षित नागरिक समाज की समग्र उन्नति में योगदान करता है, जिससे लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा होती है और सामाजिक समरसता स्थापित होती है। शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाती है और उसे जीवन के विविध पहलुओं को समझने और सामना करने की क्षमता प्रदान करती है।

1.2 भारतीय संदर्भ में शिक्षा की स्थिति : भारत में शिक्षा का एक लंबा और समृद्ध इतिहास रहा है। प्राचीन काल में गुरुकुल प्रणाली से लेकर आधुनिक विद्यालय प्रणाली तक, शिक्षा के स्वरूप में कई परिवर्तन आए हैं। हालाँकि, देश की विशाल जनसंख्या और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं

के कारण शिक्षा की पहुँच और गुणवत्ता को लेकर कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी पर्याप्त विद्यालय, योग्य शिक्षक, और मूलभूत सुविधाओं की कमी है, जिससे बच्चों की शिक्षा बाधित होती है। वहीं, शहरी क्षेत्रों में निजी विद्यालयों की अधिकता और सरकारी विद्यालयों की उपेक्षा एक गंभीर समस्या बनी हुई है।

1.3 शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) की पृष्ठभूमि : शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने की दिशा में एक ऐतिहासिक क़दम के रूप में, भारतीय सरकार ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (Right to Education Act, 2009) को लागू किया। यह अधिनियम 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का क़ानूनी अधिकार देता है। इसका उद्देश्य समाज के हर वर्ग के बच्चों को समान अवसर प्रदान करना और प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाना है। यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत लागू किया गया, जिसमें शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया गया है।

1.4 शोध का उद्देश्य और महत्त्व : इस शोध का उद्देश्य शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE) के क्रियान्वयन की स्थिति का अध्ययन करना है। यह शोध अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों, इसकी सफलता और क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण करेगा। यह अध्ययन ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति की तुलना करने के साथ-साथ सरकारी और निजी विद्यालयों में इसके प्रभाव की समीक्षा करेगा। इसके अतिरिक्त, यह शोध नीति निर्माताओं, शिक्षाविदों और समाज के अन्य हित धारकों के लिए एक दिशानिर्देश का कार्य करेगा, जिससे शिक्षा के अधिकार को प्रभावी रूप से लागू करने की रणनीतियाँ विकसित की जा सकें। यदि यह अधिनियम सही ढंग से कार्यान्वित होता है, तो यह भारत के शैक्षिक परिदृश्य को पूरी तरह से बदल सकता है और देश के भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है।

2. शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) : एक संक्षिप्त परिचय

2.1 अधिनियम का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : भारत में शिक्षा का अधिकार एक लंबी विकास यात्रा का परिणाम है। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान में शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में शामिल किया गया। संविधान के अनुच्छेद 45 में यह प्रावधान किया गया कि 6-14 वर्ष के बच्चों को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा दी जाएगी। हालाँकि, कई दशकों तक यह लक्ष्य पूरा नहीं हो सका। 1990 के दशक में सर्व शिक्षा अभियान (SSA) और मध्याह्न भोजन योजना (Mid Day Meal Scheme) जैसी नीतियों ने प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा दिया। लेकिन यह पर्याप्त नहीं था, क्योंकि देश में लाखों बच्चे अभी भी विद्यालयों से बाहर थे। 2002 में, 86वें संविधान संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 21-ए जोड़ा गया, जिससे शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया। इसके परिणामस्वरूप, वर्ष 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (Right to Education Act, 2009, RTE Act) पारित किया गया, जिसे 1 अप्रैल, 2010 से पूरे देश में लागू किया गया।

2.2 मुख्य प्रावधान और विशेषताएँ : शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 में कई महत्त्वपूर्ण प्रावधान शामिल किए गए, जिनका उद्देश्य शिक्षा को सुलभ, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण बनाना है।

1. निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा

- 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का क़ानूनी अधिकार।
- माता-पिता को अपने बच्चों को विद्यालय भेजने के लिए बाध्य किया गया।

2. निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण

- निजी विद्यालयों को अपनी कुल सीटों का 25 प्रतिशत आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों और वंचित समूहों के लिए आरक्षित करना अनिवार्य किया गया।
- इन छात्रों की शिक्षा का ख़र्च सरकार वहन करेगी।

3. विद्यालयों की आधारभूत संरचना

- प्रत्येक विद्यालय में न्यूनतम आधारभूत सुविधाएँ, जैसे कि कक्षाएँ, पुस्तकालय, पेयजल, खेल का मैदान और शौचालय उपलब्ध कराना अनिवार्य किया गया।

4. शिक्षकों की योग्यता और प्रशिक्षण

- केवल प्रशिक्षित और योग्य शिक्षकों को ही पढ़ाने की अनुमति दी गई।
- शिक्षकों को नियमित प्रशिक्षण देना अनिवार्य बनाया गया।

5. शिक्षा की गुणवत्ता सुधार

- सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (CCE) प्रणाली को लागू किया गया, जिससे बच्चों के समग्र विकास पर ध्यान दिया जा सके।
- विद्यार्थियों को कक्षा 8 तक बिना परीक्षा फेल किए अगली कक्षा में भेजने का प्रावधान।

6. विद्यालय प्रबंधन समिति (SMC)

- प्रत्येक सरकारी विद्यालय में एक प्रबंधन समिति (SMC) का गठन अनिवार्य किया गया, जिसमें माता-पिता, शिक्षकों और स्थानीय निकायों के प्रतिनिधि शामिल होंगे।

2.3 अधिनियम की संवैधानिक और क़ानूनी धाराएँ : शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 को संविधान के अनुच्छेद 21-ए के तहत लागू किया गया। इसके अलावा, यह अनुच्छेद 41, 45 और 46 से भी जुड़ा हुआ है, जो राज्य को यह दायित्व सौंपते हैं कि वह शिक्षा और अन्य आवश्यक सुविधाएँ सुनिश्चित करें। क़ानूनी रूप से, यदि कोई विद्यालय इस अधिनियम के नियमों का पालन नहीं करता है, तो उस पर कार्रवाई की जा सकती है। निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण लागू न करने पर जुर्माना लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा से वंचित बच्चों

के माता-पिता और अभिभावकों को सरकारी सहायता दी जा सकती है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 भारत में शिक्षा सुधार की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण क़दम था। इसके प्रावधानों ने न केवल विद्यालय नामांकन दर को बढ़ाया, बल्कि शिक्षा में सामाजिक समानता को भी प्रोत्साहित किया। हालाँकि, इस अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अभी भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

3. क्रियान्वयन की प्रक्रिया (Implementation Process)

शिक्षा के अधिकार अधिनियम को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों, प्रशासनिक निकायों, ग़ैर-सरकारी संगठनों (NGOs), और विद्यालयों की संयुक्त भागीदारी आवश्यक है। इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए एक विस्तृत योजना बनाई गई, जिसमें विभिन्न स्तरों पर नीति निर्माण, प्रशासनिक निगरानी, वित्तीय सहायता और सामाजिक जागरूकता अभियान शामिल किए गए।

3.1 केंद्र और राज्य सरकारों की भूमिका

शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन में केंद्र और राज्य सरकारों की प्रमुख भूमिका होती है।

केंद्र सरकार

- अधिनियम के दिशानिर्देश तैयार करती है।
- राज्यों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है।
- नीति निर्माण और निगरानी का कार्य करती है।
- राज्यों को शिक्षा सुधार के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराती है।

राज्य सरकारें

- अधिनियम को लागू करने के लिए आवश्यक नियम और प्रक्रियाएँ तैयार करती हैं।
- विद्यालयों में शिक्षक भर्ती, पाठ्यक्रम निर्माण और मूल्यांकन की निगरानी करती हैं।
- सरकारी विद्यालयों के लिए आधारभूत सुविधाएँ सुनिश्चित करती हैं।
- निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण लागू करने की ज़िम्मेदारी निभाती हैं।

3.2 प्रशासनिक और वित्तीय ढाँचा

शिक्षा के अधिकार अधिनियम को लागू करने के लिए एक प्रभावी प्रशासनिक और वित्तीय ढाँचा तैयार किया गया।

वित्तीय सहायता

- केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर सर्व शिक्षा अभियान (SSA) के तहत इस अधिनियम के

लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं।

- विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं, शिक्षकों के वेतन, और बच्चों के लिए पाठ्य सामग्री की व्यवस्था करने के लिए विशेष बजट निर्धारित किया गया।
- निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण के तहत दाखिल हुए छात्रों की फीस सरकार द्वारा वहन की जाती है।

प्रशासनिक निगरानी

- जिला शिक्षा अधिकारी (DEO) और ब्लॉक शिक्षा अधिकारी (BEO) को इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन की ज़िम्मेदारी दी गई।
- स्कूल प्रबंधन समितियाँ (SMC) स्थानीय स्तर पर विद्यालयों की स्थिति पर निगरानी रखती हैं।
- ग़ैर-सरकारी संगठनों (NGOs) को भी बच्चों के नामांकन, उपस्थिति, और ड्रॉपआउट दर को कम करने में सहयोग करने के लिए जोड़ा गया।

3.3 शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वयन की स्थिति

शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रभाव में अंतर देखा गया है।

शहरी क्षेत्र

- जागरूकता अधिक होने के कारण माता-पिता अपने बच्चों को विद्यालयों में भेजने के लिए तत्पर रहते हैं।
- निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण के तहत नामांकन की प्रक्रिया अधिक प्रभावी रही है।
- सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों और संसाधनों की अपेक्षाकृत बेहतर उपलब्धता होती है।

ग्रामीण क्षेत्र

- विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं की कमी है, जैसे कि उचित भवन, शौचालय, पीने का पानी आदि।
- प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी और उच्च अनुपस्थित दर (Teacher Absenteeism) एक बड़ी समस्या बनी हुई है।
- कई इलाकों में लड़कियों की शिक्षा को लेकर अभी भी सामाजिक बाधाएँ मौजूद हैं।
- माता-पिता की कम साक्षरता दर के कारण शिक्षा के प्रति जागरूकता कम है।

3.4 सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी

शिक्षा के अधिकार अधिनियम को सफलतापूर्वक लागू करने में सरकारी एजेंसियों के साथ-साथ ग़ैर-सरकारी संगठनों (NGOs) की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण रही है।

सरकारी एजेंसियाँ

- राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) और राज्य शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (SCERT) द्वारा पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ विकसित की जाती हैं।
- सर्व शिक्षा अभियान (SSA) के तहत बच्चों के नामांकन और उनकी शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए अभियान चलाए जाते हैं।

ग़ैर-सरकारी संगठन (NGOs)

- ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए सामुदायिक जागरूकता अभियान।
- विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं और शिक्षकों के प्रशिक्षण में सहायता करते हैं।
- बाल श्रम, बाल विवाह और अन्य सामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए कार्य करते हैं, ताकि बच्चों की स्कूल उपस्थिति सुनिश्चित की जा सके।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) के क्रियान्वयन के लिए सरकार, प्रशासन, विद्यालयों और ग़ैर-सरकारी संगठनों की सहभागिता आवश्यक है। हालाँकि, शहरी क्षेत्रों में इस अधिनियम के कुछ सकारात्मक परिणाम देखे गए हैं, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इस अधिनियम को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए प्रशासनिक निगरानी, वित्तीय सहायता और सामाजिक जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है। यदि इन पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाए, तो यह अधिनियम भारत में शिक्षा के परिदृश्य को पूरी तरह बदल सकता है और सभी बच्चों को समान शिक्षा के अवसर प्रदान कर सकता है।

4. क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियाँ (Challenges in Implementation)

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) को लागू करने में कई चुनौतियाँ सामने आई हैं। इन चुनौतियों को दूर किए बिना इस अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन संभव नहीं है। सरकार और प्रशासन द्वारा कई प्रयास किए गए, लेकिन अभी भी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता और उपलब्धता को लेकर कई समस्याएँ बनी हुई हैं।

4.1 अवसंरचनात्मक समस्याएँ (Infrastructure Issues)

भारत के कई सरकारी विद्यालयों में आवश्यक आधारभूत सुविधाओं की कमी है, जिससे बच्चों की शिक्षा प्रभावित होती है।

- विद्यालयों में पर्याप्त कक्षाएँ, पुस्तकालय, शौचालय, और पेयजल की सुविधाएँ नहीं हैं।
- कई विद्यालयों में बिजली और इंटरनेट जैसी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं।
- खेलकूद और सह-पाठयक्रम गतिविधियों के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं, जिससे बच्चों के समग्र विकास में बाधा आती है।

4.2 शिक्षकों की कमी और गुणवत्ता संबंधी समस्याएँ

शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू होने के बावजूद कई विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की भारी कमी है।

- शिक्षकों की संख्या कम होने के कारण एक शिक्षक को कई विषय पढ़ाने पड़ते हैं, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है।
- कई विद्यालयों में योग्य शिक्षकों की भर्ती प्रक्रिया धीमी और जटिल है।
- शिक्षकों को नियमित प्रशिक्षण और अपडेटेड शिक्षण तकनीकों की जानकारी नहीं दी जाती, जिससे उनके शिक्षण कौशल में सुधार नहीं हो पाता।
- कुछ स्थानों पर शिक्षक विद्यालयों में उपस्थित नहीं होते, जिससे विद्यार्थियों की पढ़ाई बाधित होती है।

4.3 निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण का क्रियान्वयन

शिक्षा के अधिकार अधिनियम के तहत निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया, लेकिन इसका सही तरीक़े से क्रियान्वयन नहीं हो पाया।

- कई निजी विद्यालय इस प्रावधान का पालन नहीं करते हैं और ग़रीब बच्चों को प्रवेश देने से बचने के लिए बहाने बनाते हैं।
- कई माता-पिता को इस योजना की जानकारी नहीं होती, जिससे वे अपने बच्चों का नामांकन नहीं करा पाते।
- कई बार निजी विद्यालय इन छात्रों को अन्य विद्यार्थियों की तरह सुविधाएँ नहीं देते, जिससे उनके साथ भेदभाव किया जाता है।
- सरकार द्वारा निजी विद्यालयों को वित्तीय सहायता देने में देरी होती है, जिससे यह योजना प्रभावी नहीं हो पाती।

4.4 ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में जागरूकता की कमी

ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में शिक्षा के अधिकार अधिनियम की जानकारी सीमित है।

- कई माता-पिता को यह नहीं पता कि उनके बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार है।
- बाल श्रम, बाल विवाह, और अन्य सामाजिक बंधनों के कारण कई बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते।
- कई क्षेत्रों में लोग बेटों की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं और बेटियों को शिक्षा से वंचित रखते हैं।
- समुदायों में यह धारणा बनी हुई है कि शिक्षा के बजाय कृषि और मज़दूरी में बच्चों का योगदान अधिक उपयोगी है।

4.5 वित्तीय एवं प्रशासनिक बाधाएँ

शिक्षा के अधिकार अधिनियम को लागू करने के लिए पर्याप्त बजट और वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है।

- सरकार द्वारा जारी धनराशि कई बार विद्यालयों तक समय पर नहीं पहुँचती, जिससे विकास कार्य रुक जाते हैं।
- विद्यालयों में संसाधनों की सही निगरानी नहीं होने के कारण धन का दुरुपयोग और भ्रष्टाचार की घटनाएँ सामने आती हैं।
- शिक्षा विभाग में प्रशासनिक लापरवाही और धीमी प्रक्रिया के कारण शिक्षकों की भर्ती और सुविधाओं के विकास में देरी होती है।

4.6 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक (बाल श्रम, लैंगिक भेदभाव आदि)

शिक्षा के क्षेत्र में कई सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ भी सामने आती हैं।

- ग़रीब परिवारों के बच्चे अक्सर बाल श्रम में लगे होते हैं, जिससे वे विद्यालय नहीं जा पाते।
- कई माता-पिता लड़कियों की पढ़ाई को महत्त्व नहीं देते और उन्हें घरेलू कार्यों में लगा देते हैं।
- जाति और वर्ग भेदभाव के कारण कई बच्चों को विद्यालयों में उचित वातावरण नहीं मिलता, जिससे वे पढ़ाई छोड़ देते हैं।
- शिक्षा की गुणवत्ता पर कम ध्यान दिया जाता है, जिससे बच्चों में सीखने की रुचि कम हो जाती है।

5. शिक्षा के अधिकार अधिनियम का प्रभाव (Impact of RTE Act] 2009)

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) लागू होने के बाद भारत में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कई सकारात्मक बदलाव देखने को मिले हैं। इस अधिनियम ने शिक्षा को सभी बच्चों के लिए सुलभ और अनिवार्य बनाया, जिससे समाज के वंचित वर्गों को लाभ मिला। हालाँकि, कुछ चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं, लेकिन समग्र रूप से इस अधिनियम ने भारतीय शिक्षा प्रणाली पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला है।

5.1 प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर नामांकन दर में वृद्धि

RTE अधिनियम लागू होने के बाद सरकारी और निजी विद्यालयों में 6-14 वर्ष के बच्चों के नामांकन में वृद्धि हुई।

- सरकारी रिपोर्टों के अनुसार, विद्यालयों में दाख़िले की संख्या बढ़ी, विशेषकर ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में।
- निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण के कारण आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग (EWS) के बच्चों को भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अवसर मिला।

- शिक्षा की अनिवार्यता के कारण माता-पिता अब अपने बच्चों को विद्यालय भेजने के लिए अधिक जागरूक हुए हैं।

5.2 सरकारी और निजी विद्यालयों में प्रवेश के अनुपात में परिवर्तन

इस अधिनियम के लागू होने के बाद सरकारी और निजी विद्यालयों में नामांकन की प्रवृत्ति में बदलाव देखा गया।

- कई अभिभावकों ने अपने बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के तहत सरकारी विद्यालयों में भेजना शुरू किया।
- निजी विद्यालयों में ग़रीब और पिछड़े वर्ग के बच्चों को प्रवेश मिला, जिससे सामाजिक समावेशन (Social Inclusion) को बढ़ावा मिला।
- स्कूल प्रबंधन समितियाँ (SMC) और अभिभावक-शिक्षक बैठकों से शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हुआ।

5.3 लड़कियों और वंचित वर्गों की शिक्षा में सुधार

RTE अधिनियम ने शिक्षा में लैंगिक समानता (Gender Equality) और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा दिया।

- पहले जहाँ ग़रीब और वंचित वर्ग के बच्चों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था, अब उन्हें विद्यालयों में प्रवेश मिल रहा है।
- सरकार द्वारा चलाई गई योजनाएँ, जैसे मध्याह्न भोजन योजना (Mid-Day Meal Scheme) और कन्या शिक्षा प्रोत्साहन योजनाओं ने विशेष रूप से लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा दिया।
- अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के बच्चों को सरकारी विद्यालयों में प्राथमिकता दी गई।

5.4 ड्रॉपआउट दर में कमी और सीखने के परिणाम

- विद्यालयों में बच्चों की ड्रॉपआउट दर (Dropout Rate) में गिरावट आई, क्योंकि शिक्षा अब क़ानूनी रूप से अनिवार्य हो गई है।
- सतत और व्यापक मूल्यांकन (CCE) पद्धति ने बच्चों को बिना फ़ेल हुए अगली कक्षा में जाने का अवसर प्रदान किया, जिससे उनमें पढ़ाई का डर कम हुआ।
- शिक्षकों की उपस्थिति और उनकी जवाबदेही बढ़ी, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हुआ।

5.5 अभिभावकों और समाज में शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता

- शिक्षा के अधिकार अधिनियम ने समाज में शिक्षा की अनिवार्यता और महत्त्व के प्रति जागरूकता बढ़ाई।
- सरकारी अभियानों और ग़ैर-सरकारी संगठनों (NGOs) की मदद से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हुआ।

- माता-पिता अब बच्चों की शिक्षा को लेकर अधिक गंभीर हो गए हैं और उन्हें नियमित रूप से विद्यालय भेजने लगे हैं।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव लाया। नामांकन दर बढ़ने, ड्रॉपआउट दर घटने, और सामाजिक समानता को बढ़ावा मिलने के बावजूद, अभी भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। बेहतर क्रियान्वयन और निगरानी प्रणाली के साथ, यह अधिनियम शिक्षा के सार्वभौमीकरण (Universalization of Education) में एक मील का पत्थर साबित हो सकता है।

6. तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Analysis)

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) के प्रभाव और क्रियान्वयन को बेहतर समझने के लिए विभिन्न संदर्भों में इसका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। यह अध्ययन हमें यह जानने में सहायता करता है कि भारत में यह अधिनियम कितनी प्रभावी रूप से लागू हुआ और अन्य देशों या राज्यों की तुलना में इसमें क्या सुधार किए जा सकते हैं।

6.1 अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य : अन्य देशों के समान शिक्षा क़ानून

शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने की पहल केवल भारत तक सीमित नहीं है। कई अन्य देशों में भी इसी प्रकार के क़ानून पहले से मौजूद हैं, जिनकी तुलना भारतीय परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है।

- **फिनलैंड :** यहाँ शिक्षा पूरी तरह से निःशुल्क और अत्यधिक गुणवत्ता युक्त है। सरकार हर नागरिक को समान और उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करती है।
- **संयुक्त राज्य अमेरिका :** अमेरिकी क़ानून के तहत, सभी बच्चों को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। हालाँकि, वहाँ सरकारी और निजी विद्यालयों के बीच स्पष्ट गुणवत्ता भिन्नता देखी जाती है।
- **जर्मनी :** यहाँ विद्यालयी शिक्षा मुफ़्त है और व्यावसायिक प्रशिक्षण (Vocational Training) पर विशेष ज़ोर दिया जाता है।
- **चीन :** चीन में शिक्षा को अनिवार्य और निःशुल्क बनाने के साथ-साथ तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा को भी बढ़ावा दिया गया है।

तुलनात्मक रूप से, भारत में शिक्षा के अधिकार अधिनियम ने शिक्षा को अनिवार्य बनाया है, लेकिन शिक्षा की गुणवत्ता और क्रियान्वयन में कई चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं।

6.2 भारत के विभिन्न राज्यों में क्रियान्वयन की स्थिति की तुलना

भारत में सभी राज्यों ने शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE) को अलग-अलग स्तरों पर लागू किया है।

- **केरल और तमिलनाडु :** इन राज्यों में साक्षरता दर सबसे अधिक है, और RTE का प्रभावी

रूप से क्रियान्वयन किया गया है। यहाँ आधारभूत सुविधाएँ, प्रशिक्षित शिक्षक, और शिक्षा में डिज़िटलीकरण को बढ़ावा दिया गया है।

- **बिहार और उत्तर प्रदेश :** इन राज्यों में अभी भी शिक्षा का आधारभूत ढाँचा कमज़ोर है, और विद्यालयों में पर्याप्त शिक्षकों की कमी देखी जाती है।
- **राजस्थान और मध्य प्रदेश :** यहाँ शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हुआ है, लेकिन बाल श्रम और लैंगिक असमानता जैसी सामाजिक बाधाएँ अभी भी मौजूद हैं।

इस तुलना से स्पष्ट होता है कि भारत के कुछ राज्यों में तो सफल रहा है, लेकिन अन्य राज्यों में इसे प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए अधिक प्रशासनिक सुधारों और संसाधनों की आवश्यकता है।

6.3 सरकारी और निजी विद्यालयों में प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन

सरकारी विद्यालय

- शिक्षा निःशुल्क होती है, लेकिन कई विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं की कमी है।
- शिक्षकों की कमी, उच्च अनुपस्थिति दर और गुणवत्ता में गिरावट देखी गई है।
- सरकारी योजनाओं जैसे मध्याह्न भोजन योजना और निःशुल्क पाठ्यपुस्तक वितरण के कारण ग़रीब बच्चों को अधिक लाभ मिला है।

निजी विद्यालय

- यहाँ शिक्षा की गुणवत्ता अधिक होती है, लेकिन शिक्षा महँगी होती है।
- 25 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान को कई विद्यालयों ने स्वीकार किया, लेकिन कई विद्यालय इसे लागू करने से बचते हैं।
- निजी विद्यालयों में संसाधनों की उपलब्धता अधिक होती है, जिससे बच्चों का समग्र विकास बेहतर होता है।

तुलनात्मक रूप से, सरकारी विद्यालयों में सुधार की आवश्यकता है ताकि वे निजी विद्यालयों के समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकें।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE) ने भारत में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति को बेहतर बनाने का प्रयास किया, लेकिन अंतरराष्ट्रीय मानकों, राज्यों के भीतर असमानताओं, और सरकारी व निजी विद्यालयों की गुणवत्ता में भिन्नता को देखते हुए, अभी और सुधारों की आवश्यकता है। यदि सरकार इस अधिनियम के तहत शिक्षकों की गुणवत्ता, आधारभूत संरचना, और प्रशासनिक जवाबदेही में सुधार करे, तो यह क़ानून अधिक प्रभावी हो सकता है और सभी बच्चों को समान रूप से लाभ पहुँचा सकता है।

7. सुझाव और समाधान (Suggestions and Recommendations)

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) ने भारत में शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने का प्रयास किया, लेकिन इसके क्रियान्वयन में कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इन चुनौतियों को दूर करने और इस अधिनियम को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ आवश्यक सुधारों की सिफ़ारिश की जा सकती है।

7.1 आधारभूत संरचना को सुदृढ़ करना

- सरकारी विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं जैसे कि उचित भवन, पेयजल, स्वच्छ शौचालय, पुस्तकालय, और खेल के मैदानों को विकसित किया जाना चाहिए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए, ताकि बच्चे लंबी दूरी तय करने के कारण विद्यालय छोड़ने को मजबूर न हों।
- सभी विद्यालयों में डिज़िटल शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए स्मार्ट क्लासरूम और इंटरनेट सुविधाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

7.2 शिक्षकों की संख्या और गुणवत्ता में सुधार

- सरकारी विद्यालयों में पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
- शिक्षकों को नियमित रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिए, जिससे वे नई शिक्षण पद्धतियों और तकनीकों को सीख सकें।
- शिक्षकों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए सख़्त निगरानी प्रणाली लागू की जानी चाहिए।

7.3 सरकारी योजनाओं की प्रभावशीलता बढ़ाना

- मध्याह्न भोजन योजना (Mid Day Meal Scheme) और निःशुल्क पाठ्यपुस्तक एवं वर्दी योजना का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाए, ताकि ग़रीब और वंचित वर्ग के बच्चे विद्यालय में नामांकन और उपस्थिति बनाए रखें।
- सरकारी विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए जनता की भागीदारी और सामुदायिक निगरानी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

7.4 निजी विद्यालयों में आरक्षण नीति की कड़ी निगरानी

- निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण नीति को सख़्ती से लागू करने के लिए एक प्रभावी निगरानी प्रणाली विकसित की जाए।
- सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आरक्षित छात्रों को भी अन्य छात्रों के समान सुविधाएँ और अवसर मिलें।
- यदि कोई निजी विद्यालय आरक्षण नीति का पालन नहीं करता है, तो उसके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई की जाए।

7.5 ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता और सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहन

- शिक्षा के महत्त्व को समझाने के लिए ग्राम सभाओं, नुक्कड़ नाटकों और सामुदायिक बैठकों का आयोजन किया जाना चाहिए।
- माता-पिता को प्रेरित किया जाए कि वे अपने बच्चों को नियमित रूप से विद्यालय भेजें, ख़ासकर लड़कियों की शिक्षा को लेकर जागरूकता बढ़ाई जाए।
- बाल श्रम और बाल विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं को रोकने के लिए क़ानूनी कड़ाई और सामाजिक जागरूकता आवश्यक है।

7.6 डिजिटल शिक्षा और तकनीकी संसाधनों का उपयोग

- डिज़िटल शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए ई-लर्निंग सामग्री, ऑनलाइन कक्षाएँ और शिक्षा ऐप्स विकसित किए जाने चाहिए।
- विद्यालयों में कंप्यूटर लैब और स्मार्ट क्लास रूम की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए।
- दूरदराज के क्षेत्रों में रेडियो, टेलीविज़न और मोबाइल एप्स के माध्यम से शिक्षा को सुलभ बनाया जा सकता है।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए बुनियादी ढाँचे, शिक्षकों की गुणवत्ता, सरकारी योजनाओं की पारदर्शिता, और सामुदायिक जागरूकता में सुधार की आवश्यकता है। यदि इन सुझावों को गंभीरता से लागू किया जाए, तो यह अधिनियम भारत में सर्वसमावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को साकार करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

8. निष्कर्ष

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) भारत में शिक्षा को सार्वभौमिक और समान बनाने की दिशा में एक ऐतिहासिक क़दम था। इस अधिनियम ने 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में सुनिश्चित किया। इससे लाखों बच्चों को शिक्षा के अवसर मिले और स्कूलों में नामांकन दर में वृद्धि हुई। हालाँकि, इस अधिनियम के सफल क्रियान्वयन के बावजूद, इसके सामने कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जिनका समाधान किया जाना आवश्यक है।

8.1 शिक्षा के अधिकार अधिनियम की सफलता और सीमाएँ

शिक्षा के अधिकार अधिनियम की सफलता को निम्नलिखित बिंदुओं में देखा जा सकता है :

- **विद्यालय नामांकन दर में वृद्धि :** अधिनियम लागू होने के बाद विद्यालयों में बच्चों के नामांकन में बढ़ोतरी हुई, विशेषकर आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों (EWS) और वंचित समूहों के बच्चों को लाभ मिला।

- **लड़कियों की शिक्षा में सुधार :** सरकारी योजनाओं और जागरूकता अभियानों के कारण लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा मिला।
- **निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण :** ग़रीब और वंचित वर्गों के बच्चों को भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला।
- **ड्रॉपआउट दर में कमी :** सतत और व्यापक मूल्यांकन प्रणाली (CCE) ने बच्चों को नियमित रूप से विद्यालय में बनाए रखने में सहायता की।

हालाँकि, इस अधिनियम की कुछ सीमाएँ भी हैं :

- **विद्यालयों की आधारभूत संरचना में कमी :** कई सरकारी विद्यालयों में पर्याप्त सुविधाएँ, जैसे कि पुस्तकालय, शौचालय, पीने का पानी और खेल का मैदान उपलब्ध नहीं हैं।
- **शिक्षकों की संख्या और गुणवत्ता :** प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी और शिक्षण गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता है।
- **निजी विद्यालयों में आरक्षण नीति का कमज़ोर क्रियान्वयन :** कई निजी विद्यालय 25 प्रतिशत आरक्षण के नियमों का पूरी तरह पालन नहीं करते।
- **ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता की कमी :** बाल श्रम, ग़रीबी और लैंगिक असमानता के कारण अभी भी कई बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते।

8.2 अधिनियम के प्रभाव को बढ़ाने के लिए आवश्यक रणनीतियाँ

शिक्षा के अधिकार अधिनियम को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित सुधार आवश्यक हैं :

- विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं को सुनिश्चित करना
- शिक्षकों की गुणवत्ता और प्रशिक्षण में सुधार
- निजी विद्यालयों में आरक्षण नीति की सख़्त निगरानी
- ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में जागरूकता अभियान चलाना
- डिज़िटल शिक्षा और ऑनलाइन लर्निंग संसाधनों को बढ़ावा देना

8.3 भविष्य के शोध की संभावनाएँ

भविष्य में इस अधिनियम के प्रभाव पर और अधिक गहन शोध किए जा सकते हैं, जिनमें निम्नलिखित विषय शामिल हो सकते हैं :

- शिक्षा के अधिकार अधिनियम का शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव
- विभिन्न राज्यों में क्रियान्वयन की तुलना और विश्लेषण
- शहरी और ग्रामीण विद्यालयों के बीच शिक्षा में असमानता
- डिज़िटल शिक्षा और RTE अधिनियम का भविष्य में संभावित प्रभाव

शिक्षा के अधिकार अधिनियम (RTE) भारत में शिक्षा के सार्वभौमिककरण के लिए एक मज़बूत पहल है। हालाँकि, इसके प्रभाव को और अधिक व्यापक बनाने के लिए प्रशासनिक सुधार,

वित्तीय निवेश और नीति-निर्माण में सुधार की आवश्यकता है। यदि सरकार, विद्यालय, शिक्षक, और समाज मिलकर इस अधिनियम को और अधिक प्रभावी रूप से लागू करें, तो यह भारत में गुणवत्तापूर्ण, समावेशी और समान शिक्षा सुनिश्चित करने में सहायक सिद्ध होगा।

❑

संदर्भ

1. भारत सरकार (2009)। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (RTE Act, 2009)। भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) (2011)। शिक्षा का अधिकार अधिनियम : एक परिचय और क्रियान्वयन रणनीतियाँ। नई दिल्ली : एनसीईआरटी प्रकाशन
3. यूनिसेफ इंडिया (2020)। भारत में शिक्षा का अधिकार : क्रियान्वयन और चुनौतियाँ। नई दिल्ली : यूनिसेफ
4. सर्व शिक्षा अभियान (2015)। भारत में प्रारंभिक शिक्षा : नामांकन, गुणवत्ता और चुनौतियाँ। नई दिल्ली : भारत सरकार
5. योजना आयोग (2013)। शिक्षा के अधिकार अधिनियम का प्रभाव : एक मूल्यांकन अध्ययन। नई दिल्ली : योजना आयोग, भारत सरकार
6. नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन (NUEPA) (2018)। भारतीय राज्यों में शिक्षा के अधिकार अधिनियम का तुलनात्मक अध्ययन। नई दिल्ली : एनयूईपीए
7. यूनाइटेड नेशंस डेवलपमेंट प्रोग्राम (UNDP) (2021)। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के अधिकार : भारत बनाम अन्य देश। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम
8. भारतीय शिक्षा आयोग (2022)। निजी विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम का क्रियान्वयन और प्रभाव। नई दिल्ली : भारत सरकार
9. प्रसाद, आर. (2019)। शिक्षा का अधिकार अधिनियम और सरकारी विद्यालयों की स्थिति। शिक्षा नीति पत्रिका, खंड 34, अंक 2, पृष्ठ 120-145
10. शर्मा, ए. (2017)। भारत में शिक्षा की गुणवत्ता और RTE अधिनियम : एक विश्लेषण। भारतीय शैक्षिक शोध जर्नल, खंड 29, अंक 3, पृष्ठ 78-101
11. सिंह, वी. (2016)। ग्रामीण और शहरी विद्यालयों में शिक्षा के अधिकार अधिनियम का तुलनात्मक अध्ययन। भारतीय समाजशास्त्र समीक्षा, खंड 18, अंक 1, पृष्ठ 35-60
12. विश्व बैंक (2015)। भारत में प्राथमिक शिक्षा सुधार और शिक्षा के अधिकार अधिनियम का प्रभाव। वाशिंगटन डी.सी. : विश्व बैंक प्रकाशन

प्रो. देवदत्त शर्मा

भारत में अपराधों के लिए दोषसिद्ध के संबंध में संरक्षण : क्या और क्यों?

भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 में कहा गया है -- (1) कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्ध दोष नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक शास्ति का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के लिए जाने के समय प्रवृतत विधि के अधीन अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा। (2) किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा। (3) किसी अपराध के लिए अभियुक्त से किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 उन व्यक्तियों को, जिन पर अपराध करने का अभियोजन लगाया गया है, निम्नलिखित तीन सांविधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है --

(1) कार्योत्तर विधियों से संरक्षण

(2) दोहरे दंड से संरक्षण

(3) आत्म-अभिशंसन से संरक्षण।

कार्योत्तर विधियों से संरक्षण : कार्योत्तर विधि का अर्थ है -- वह विधि जो अपराध करने के पश्चात् बनाई जाती है और ऐसे कार्य को अपराध घोषित करती है जो जब किया गया था, उस समय अपराध नहीं था या प्रवृत्त दंड विधि में विहित दंड की मात्रा को बढ़ा देती है।

सामान्यतः विधानमंडल को भूतलक्ष्यी या भविष्यलक्ष्यी दोनों प्रकार की विधियाँ बनाने का अधिकार है। अनुच्छेद 20(1) केवल ऐसी दंड विधि बनाने को असांविधानिक मानता है जो भूतलक्ष्यी हैं यानी भूतकाल से लागू होती है या किसी प्रवृत्त दंड विधि में भूतकाल से दंड की मात्रा को बढ़ाती है। इस प्रकार विधानमंडल, भूतलक्ष्यी सिविल (दीवनी) विधि बना सकती है। उदाहरणार्थ, भूतकाल से कर (टैक्स) लगाने वाली विधि बनाई जाती है तो ऐसी विधि (सिविल) सांविधानिक होगी।[1]

अनुच्छेद 20(1) को निम्न दो खंडों में विभक्त किया जा सकता है।

खंड (अ) : कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्ध दोष नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है।

खंड (ब) : कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए उससे अधिक शास्ति का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी।

परीद बनाम नीलाम्बरन[2] का वाद अनुच्छेद 20(1) के खंड (अ) के उल्लंघन का एक अच्छा उदाहरण है। इस वाद में उस समय प्रवृत्त विधि में पंचायत कर न देना अपराध नहीं था। बाद में एक विधि पारित करके उसे अपराध घोषित कर दिया। केवल उच्च न्यायालय ने फ़ैसला दिया कि बाद में पारित विधि उक्त अनुच्छेद का स्पष्ट उल्लंघन करती है। अतः असांविधानिक है।

केदारनाथ बनाम वेस्ट बंगाल राज्य[3] का वाद अनुच्छेद 20(1) के उक्त खंड (ब) के उल्लंघन का एक अच्छा उदाहरण है। इस वाद में अभियुक्त ने सन् 1947 में एक अपराध किया था। उस समय प्रवृत्त विधि के अंतर्गत जो कारावास अथवा अर्थदंड दिया जा सकता था, उक्त विधि में सन् 1949 में संशोधन के किए गए अपराध के लिए दंड को बढ़ा दिया, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि सन् 1947 में किए गए अपराध के लिए सन् 1949 में दंड बढ़ाने वाली विधि, असांविधानिक है।

लाभकारी विधि : कार्योत्तर विधियों में लाभकारी विधि का लाभ अभियुक्त को मिलेगा अर्थात् यदि किसी विधि के द्वारा विहित दंड को बाद में विधि बनाकर काम कर दिया जाए तो अभियुक्त को उसका लाभ मिलेगा। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 20(1) कृत कार्य/अपराध के लिए बाद में विधि बनाकर दंड बना कर दंड बनाने का विरोधी है, दंड कम करने का नहीं।

टी. बराय बनाम हेनरी आ हो[4] के वाद में 'खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम 1954' की धारा 16(1) (ए) के अधीन प्रत्यर्थी के विरुद्ध 1975 में अपराध करने के लिए आजीवन कारावास के दंड का प्रावधान था किंतु 1976 में उक्त अधिनियम में संशोधन करके इसे घटाकर तीन वर्ष का कारावास कर दिया गया। अतः निर्णय दिया गया कि अभियुत घटी हुई सज़ा पाने का हक़दार है।

रतनलाल बनाम पंजाब राज्य[5] के वाद में 16 वर्षीय लड़के पर घर में अनाधिकार प्रवेश एवं 7 वर्ष की बालिका का शील भंग करने का अभियोग चलाया गया था। अधीनस्थ न्यायालय ने उसे 6 वर्ष का कठोर कारावास दिया और जुर्माना भी लगाया। अपील न्यायालय में अपील के संबंधित अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अभियुक्तों को कारावास का दंड देने का प्रतिषेध कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि कारावास के दंड से मुक्त होने का हक़दार है।

दोहरे अभियोजन और दंड से उन्मुक्ति : भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 के खंड (2) में कहा गया है कि ''किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक

अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा।'' यहाँ पर 'और' का उपयोग संयोजक के रूप में किया गया है। यह प्रावधान आंग्ल विधि के सिद्धांत (Name debet v/s vexari) पर आधारित है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए दो बार अभियोजित व दंडित नहीं किया जाएगा।

अमेरिका के संविधान का 5वाँ संशोधन भी यह उपबंधित करता है कि किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए उसके जीवन या किसी अंग को दोबारा ख़तरे में नहीं डाला जाएगा। उल्लेखनीय है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(2) में प्रदत्त संरक्षण का क्षेत्र, अमेरिका के दोहरे ख़तरे वाले और इंग्लैंड कॉमन लॉ नियम की अपेक्षा अधिक सीमित है। उक्त दोनों प्रावधान एक अपराध के लिए दूसरे विचारण (अभियोजन) को वर्जित करते हैं अर्थात् यदि किसी व्यक्ति का किसी अपराध के लिए एक बार अभियोजन किया जा चुका है तो वह दोहरे ख़तरे के नियम के संरक्षण का दावा कर सकता है; चाहे पहले अभियोजन में वह उन्मुक्त कर दिया हो या दोष सिद्ध किया गया हो, किंतु अनुच्छेद 20(2) के अंतर्गत यह आवश्यक है कि अभियुक्त के विरुद्ध एक अपराध के लिए केवल अभियोजन ही न चलाया गया हो वरन् उसे दंडित भी किया गया हो तथा दूसरा अभियोग उसी अपराध पर आधारित हो। यदि पहली बार अभियोग चलाने के फलस्वरूप अभियुक्त को विमुक्त कर दिया गया हो तो दूसरे अभियोग पर रोक नहीं है चाहे तथ्य वही हो। इस प्रकार अनुच्छेद 20(2) में प्रयुक्त अभियोजन शब्द इसके क्षेत्र को काफ़ी परिसीमित कर देता है; यदि अभियोजन के फलस्वरूप कोई दंड नहीं दिया गया है तो अनुच्छेद 20(2) लागू नहीं होगा।

इस प्रकार अनुच्छेद 20(2) के संरक्षण के लिए तीन आवश्यक शर्तें हैं --

(1) व्यक्ति का अभियुक्त होना आवश्यक है।

(2) अभियोजन या कार्यवाही किसी न्यायालय या न्यायिक अभिकरण के समक्ष हुई हो और वह न्यायिक प्रकृति की रही हो।

(3) अभियोजन किसी विहीत विधि, अपराध के संबंध में हो जिसके लिए दंड का प्रावधान हो।[6]

महबूल हसन बनाम बंबई राज्य[7] के वाद में अपीलार्थी चोरी से भारत में कुछ सोना लाया किंतु उसने कस्टम अधिकारियों के समक्ष यह घोषित नहीं किया कि वह सोना लाया है। कस्टम अधिकारियों ने 'सी कस्टम एक्ट' (Sea Customs Act) के अधीन उसके सोने को ज़ब्त कर लिया। इसके पश्चात् उस पर 'फॉरेन एक्सचेंज ऐयूलेशन एक्ट' के अंतर्गत बिना अनुमति के सोना लाने के अपराध के लिए अभियोग चलाया गया। अपीलार्थी ने इस पर आपत्ति की और कहा कि यह दूसरा अभियोजन एक ही अपराध के लिए है अर्थात् भारत में सोना लाने के लिए एक बार अभियोजित और दंडित किया जा चुका है। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि कस्टम अधिकारी, न्यायालय या न्यायिक अभिकरण नहीं है और न ही 'सी कस्टम एक्ट' के अंतर्गत सोना ज़ब्ती की कार्यवाही न्यायिक प्रकृति का है जिससे 'दोहरे ख़तरे' का

प्रावधान लागू नहीं होता है। अतः निर्णय दिया गया कि 'फॉरेन एक्सचेंज एयूलेशन एक्ट' के अंतर्गत चलाया गया अभियोग, असांविधानिक नहीं था।

इसी प्रकार विभागीय या प्रशासी प्रावधिकारियों के द्वारा की गई कार्यवाही भी न्यायिक प्रकृति की नहीं होती है और उनके विरुद्ध 'दोहरे ख़तरे' के नियम की सुरक्षा का दावा करना वर्जित नहीं है।

वेंकटरमन बनाम भारत संघ[8] के वाद में प्रार्थी को पब्लिक सर्विस इंक्वायरीज एक्ट' के अधीन एक जाँच के परिणामस्वरूप नौकरी से बर्ख़ास्त कर दिया गया। यह कार्यवाही जाँच कमिश्नर के समक्ष हुई थी। बाद में उस पर भारतीय दंड संहिता और भ्रष्टाचार निरोध अधिनिमय के अंतर्गत अपराध करने का अभियोग चलाया गया। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि कमिश्नर के समक्ष की गई कार्यवाही, आपराधिक कार्यवाही नहीं थी बल्कि वह तो तथ्यों का पता लगाने के लिए की गई थी जिसके आधार पर उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की गई थी। अतः प्रार्थी पर भारतीय दंड संहिता व भ्रष्टाचार निरोध अधिनियम के अंतर्गत अभियोग चलाना असांविधानिक नहीं है।

इस प्रकार अनुच्छेद 20(2) एक ही अपराध के लिए दो बार अभियोग चलाने व दंडित करने से रोकता है, दूसरे अपराध के लिए अभियोग चलाने व दंडित करने से नहीं।

आत्म-अभिशंसन : अनुच्छेद 20 का खंड (3) उपबंधित करता है कि ''किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।'' इस खंड में आंग्ल विधि और अमेरिका की विधि की इस सामान्य नियम को समाविष्ट किया है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तब उसे अपराधी न सिद्ध कर दिया जाए। अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने का भार अभियोजक पर होता है।

अमेरिका का संविधान (5वाँ संशोधन) किसी अभियुक्त को किसी आपराधिक मामले में अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए बाध्य करने को वर्जित करता है। इस प्रकार अनुच्छेद 20 का खंड (3), दांडिक विधि के इस मूल सिद्धांत के अनुकूल है कि अभियुक्त अपने को निर्दोष होन की अवधारणा पर भरोसा करने का अधिकारी है और अपने विरुद्ध साक्ष्य देने या गवाह बनने को बाध्य नहीं किया जा सकता है।[9] यह सिद्धांत दीवानी-कार्यवाहियों या दंड के अतिरिक्त अन्य प्रकार की शास्तियों पर लागू नहीं है।[10]

इस प्रकार यह सिद्धांत किसी साक्षी के लिए नहीं बल्कि अभियुक्त के लिए है।[11] इस सिद्धांत के लागू होने की शर्तें अग्रलिखित हैं[12] --

(1) उस व्यक्ति पर किसी अपराध को करने का अभियोग लगाया गया हो।

(2) उसे साक्षी होने के लिए बाध्य किया गया हो।

(3) उसे अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य किया गया हो।

यह प्रतिषेध वहाँ लागू नहीं होता है जहाँ तलाशी होने पर अभियुक्त कोई वस्तु या दस्तावेज़ अभिगृहीत किया जाता है।[13]

इसी कारणवश यह खंड अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षा को या अंगूठे की छाप या नमूने का हस्ताक्षर लेने को वारित नहीं करता है।[14]

ज्ञातव्य है कि यह संरक्षण केवल दांडिक कार्यवाहियों में अभियुक्त को मिलता है, साक्षियों को नहीं।[15]

बाध्य किया जाना : अनुच्छेद 20(3) का आवश्यक अंग है -- बाध्य किया जाना। यह खंड बिना किसी उत्प्रेरणा, धमकी या वचन के स्वेच्छा से की गई स्वीकृति या संस्वीकृति को प्रति सिद्ध नहीं करता। चाहे उस स्वीकृति को बाद में वापस ले लिया गया हो।[16]

बाध्यता के कई रूप हो सकते हैं, यह शारीरिक भी हो सकती है और मानसिक भी हो सकती है।[17] बाध्यता होने पर किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया कथन अस्वैच्छिक हो जाएगा। जहाँ किसी व्यक्ति को भूखा रखा जाता है या पीटा जाता है, वहाँ बाध्य किया, माना जाएगा।[18]

निम्नलिखित परिस्थितियों में इस खंड के अंतर्गत बाध्यता का अभाव माना गया --

(अ) केवल यह कारण कि जब कथन किया गया तब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था।[19]

(ब) जहाँ किसी व्यक्ति ने स्वेच्छा से और स्वतंत्र रूप में कोई बातचीत की और वह बातचीत उसकी जानकारी के बिना टेपरिकॉर्डर पर संगृहीत कर ली गई हो।[20]

(स) जहाँ कोई व्यक्ति विधि के अधीन किसी प्रश्न का उत्तर देने या दस्तावेज़ पेश करने के लिए आबद्ध नहीं है।[21]

(द) उसे यह चेतावनी दी गई थी, यदि वह व्यक्ति सत्य नहीं बताएगा तो उस पर झूठी गवाही देने का अभियोग चल सकता है।[22]

(य) उत्तर देने से इनकार करने या सत्यतापूर्ण उत्तर न देने के कारण जो विधिक शास्ति दी जाएगी, उसके कारण से अनुच्छेद 20(3) अर्थान्तर्गत बाध्यता नहीं होती है।[23]

अनुच्छेद 20(3) के उल्लंघन का प्रभाव

निर्णयों से निम्नलिखित प्रस्थापनाएँ प्राप्त होती हैं --

(1) यदि अभियुक्त व्यक्ति को अन्वेषण के दौरान विवश करके उससे प्राप्त साक्ष्य के आधार पर कोई आरोप या दांडिक अभियोजन किया जाता है तो ऐसा आरोप या अभियोजन, अभिखंडित की जा सकती है।[24]

(2) यदि अभियुक्त को प्रश्नों का उत्तर देने से मना करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 179 के अधीन अभियोजित किया जाता है और प्रश्न अपराध में फँसाने वाले थे जिनके अधीन अनुच्छेद 20(3) का संरक्षण प्राप्त है तो यह अभियोजन अभिखंडित किया जाएगा।[25]

❑

संदर्भ

1. हाथीसिंग मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम भारत संघ, ए.आई.आर., एस.सी. 223

2. ए.आई.आर. 1967, केरल, 155
3. ए.आई.आर. 1953, एस.सी. 404
4. एस.सी.सी. 1983, 177
5. ए.आई.आर. 1965, एस.सी. 444
6. भारत का संविधान, 2022 का संस्करण, पृ. 278-279, डॉ. जटा नारायण पांडेय
7. ए.आई.आर. 1953, एस.सी. 325
8. ए.आई.आर. 1954, एस.सी. 375
9. के. जोसेफ औगस्थी बनाम एम.ए. नारायण, ए.आई.आर. 1964, सु.को. 1552
10. गुजरात राज्य बनाम श्याम लाल चौकसी, ए.आई.आर. 1965, सु.को. 1251
11. लक्ष्मीमल चौरसिया बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1968, सु.को. 938
12. बंबई राज्य बनाम कथी कोली औधद, ए.आई.आर. 1961, सु.को. 1808
13. पुथम्मा बनाम केरल राज्य, ए.आई.आर. 1978, एस.सी. 771
14. हरियाणा राज्य जय सिंह, ए.आई.आर. 2003, एस.सी. 1696
15. चौरसिया बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 938
16. कलावती बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, 1953, ए.आई.आर. 546
17. युसूफ अली बनाम मराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 147
18. 17 के अनुसार, पृ. 150
19. नारायण लाल बनाम मिस्त्री, ए.आई.आर. 1961, पृ. 29
20. संदर्भ 17 के अनुसार, पृ. 150
21. दस्तगीर बनाम मद्रास राज्य, ए.आई.आर. एस.सी. 756
22. वीरा इब्राहिम बनाम बम्बई राज्य, ए.आई.आर. एस.सी. 1167
23. मुम्बई राज्य बनाम काठी कालू, ए.आई.आर. एस.सी. 1808
24. नंदिनी बनाम वाणी, ए.आई.आर. 1978, एस.सी. पैरा 39
25. भारत की सांविधानिक विधि, डॉ. डी.डी. बसु, पृ. 78

रिपोर्ट

डॉ. शकुंतला कालरा

विधि भारती परिषद् की अंतरराष्ट्रीय काव्य संगोष्ठी

विधि भारती परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय हिंदी दिवस, अयोध्या में भव्य भगवान राम मंदिर में प्राण-प्रतिष्ठा की वर्षगाँठ, स्वतंत्रता के सिरमौर सेनानी नेता जी सुभाष चंद्र बोस की जयंती और भारत के 75वें गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में शनिवार, 25 जनवरी, 2025 को शाम चार बजे से साढ़े छः बजे तक एक आनलाइन अंतरराष्ट्रीय काव्य संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें देश-विदेश के कई कविगण आमंत्रित थे। इस अंतरराष्ट्रीय काव्य संगोष्ठी का शुभारंभ हुआ माँ सरस्वती की वंदना से, जिसे सपना दत्ता सक्सेना ने अपने अत्यंत मधुर में प्रस्तुत कर सबको मंत्रमुग्ध कर दिया। सरस्वती वंदना के सुंदर मुखड़े के बोल थे 'ज्ञानेश्वरी प्रज्ञेश्वरी वर दीजिए सद्ज्ञान, अखिलेश्वरी परमेश्वरी हे माँ रचें प्रतिमान।'

सरस्वती वंदना के बाद विधि भारती परिषद् की महासचिव एवं 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक पत्रिका की प्रधान संपादक सन्तोष खन्ना जी ने कार्यक्रम का विधिवत् आरंभ करते हुए सभी का स्वागत किया और सभी आमंत्रित कवियों का संक्षेप में परिचय देते हुए सभी कवियों को अपनी कविताएँ प्रस्तुत करने का आवाहन करते हुए एक मुक्तक पढ़ा --

मेरे मन की बात तुम्हारे मन में भी आए। / तेरे दुख का दर्द मेरी संवेदना बन जाए।।

मैं ख़ुश तो हँसी तुम्हारे चेहरे पर भी हो। / रिश्तों की गरिमा का परचम यों लहराए।।

संगोष्ठी का सुंदर कवितामय संचालन किया डॉ. कुलभूषण शर्मा जी ने जिन्होंने कई वर्षों तक दिल्ली विश्वविद्यालय के कुछ कॉलेज में हिंदी के स्नातकोत्तर छात्रों को पढ़ाया परंतु वर्तमान में वह पंजाब के केंद्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा के हिंदी विभाग में पढ़ा रहे हैं। काव्य संगोष्ठी में सर्वप्रथम कवितापाठ किया डॉ. संजीव कुमार ने जो हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार तो हैं ही, वह मूलतः क़ानूनविद् हैं। वह तीन दर्जन क़ानूनी पुस्तकों के प्रणेता तो हैं ही, उनके अनेक काव्य संग्रह, प्रबंध काव्य भी प्रकाशित हैं। वह इंडिया नेटबुक्स के प्रकाशक के रूप में हिंदी भाषा की अनवरत् सेवा कर रहे हैं। इस अवसर पर उन्होंने अपने कविता संग्रह 'आइना हो गई जिंदगी' से अपनी दो सुंदर कविताओं का पाठ किया। एक कविता देखिए --

'विकास के नारों के बीच / जिंदगी जीता है आदमी, कठिन है सब सपनों का पूरा होना / जितना पूरा करता है / उतने ही टूटते हैं सपने।'

उसके बाद, प्रतिष्ठित कवि, समीक्षक और बाल साहित्यकार डॉ. शकुंतला कालरा ने अपनी चार कविताओं का पाठ किया। उन्होंने शुरुआत एक मुक्तक से की --

'हर युग में जटायु के पंख कुतर दिए जाते हैं / जब जब वह किसी सीता को बचाता है / कर दिया जाता है घायल तन मन से / जब-जब किसी रावण के राह में आता है।'

उन्होंने अपनी दो बाल कविताएँ भी सुनाई, जिनमें से एक की बानगी देखिए -- 'आओ मेघा बरसाओ वर्षा' केंद्रीय हिंदी निदेशालय की पूर्व निदेशक साहित्यकार के रूप में वह किसी परिचय की मोहताज नहीं। उन्होंने अपनी व्यंग्य कविताओं से समय बांध दिया। उनकी व्यंग्य कविताओं की एक छोटी-सी बानगी देखिए -- 'आज के जमाने में भी देखा / एक निहायत ईमानदार आदमी / जिस कार्य के लिए रिश्वत ले लेता / उसे पूरी ईमानदारी से निभाता / कहीं कोई कोताही नहीं, / आए कितनी भी मुश्किलें / उसे ईमानदारी से निपटाता।'

योग संस्कृति उत्थान पीठ और वैलनेस केयर सेंटर के संस्थापक डॉ. राजेश बत्रा जी ने अपनी राष्ट्र भक्ति और राम भक्ति कविताओं का सस्वर पाठ किया। लोकसभा के अधिकारी रहे जगदीश चंद्र चौहान ने अपनी नवगीत कविता का सुंदर पाठ प्रस्तुत किया जिसके बोल बड़े सुंदर थे --

'हर नई सुबह का स्वागत करो ऐसे / नवजीवन का शुभारंभ हो जैसे।'

कारपोरेट एक्सपोर्ट के क्षेत्र में कार्यरत सौम्या पांडेय एक अच्छी कवियत्री, उपन्यासकार और पत्रकारिता की स्तंभ भी है और उनका आलोचना के क्षेत्र में अच्छा दखल है। उन्होंने कृष्ण पूर्ण कविता सुनाई --

'नहीं चरणों में रहना है, कहे देती हूँ हे मोहन!
नहीं अब कुछ भी सुनना है, कहे देती हूँ हे मोहन!'

सपना दत्ता सक्सेना ने भी अपनी कुछ कविताएँ सुनाईं। कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए --

'मेरी अभिलाषा है इतनी, हर जन्म में भारत देश मिले।
इसकी गलियाँ नदियाँ माटी और सांस्कृतिक परिवेश मिले...'

प्रतिष्ठित साहित्यकार संतोष बंसल ने मणिपुर -- शिरोई लिली के सतरंगी फूल संबंधी कविता सुनाई जिसका अंतिम पद इस प्रकार था --

आज उन इंद्रधनुषी लड़कियों और सतरंगी लिलियों के / हर जगह नोचे हुए खून के छींटें छिटके नजर आते हैं / देवताओं का देश कही जाने वाली इस पावन धरा पर / भोर की देवी उषा की लालिमा अब रक्तरंजित रूप में / जगाती नहीं, लुभाती नहीं, लोगों का दिल दहलाती है।'

अन्य कवियों यथा डॉ. मृदुला, रायपुर से एक कालेज के प्राचार्य डॉ. प्यारेलाल आदिल आदि ने इस मंच से अपनी उत्कृष्ट रचनाओं प्रस्तुत कर इस कार्यक्रम को भव्यता प्रदान की। काव्य संगोष्ठी के औपचारिक समापन के बाद भी कुछ कवियों ने और भी कविताएँ सुनाईं। अंत में संगोष्ठी की संयोजिका सन्तोष खन्ना जी ने 'गंधारी' पर एक सारगर्भित सुंदर कविता सुनाई और साथ ही सभी प्रतिभागियों के प्रति आभार व्यक्त किया। मैं भी सन्तोष खन्ना जी के प्रति सभी की ओर से आभार व्यक्त करना चाहूँगी कि उन्होंने आनलाइन इस सुंदर आयोजन से कवियों को जोड़ने का सारस्वत कार्य किया।

❑

रमेश चन्द

वैश्विक और भारतीय संविधान के संदर्भ में समानता का अधिकार

समानता क्या है?

समानता का विषय विश्व में सर्वाधिक विवाद का विषय रहा है और इसके संबंध में हर देश में अलग-अलग परिस्थितियाँ और कारण रहे हैं। इसलिए समानता की अवधारणा, न्याय और समानता के मध्य संबंध, भौतिक आवश्यकताओं, समानता के मानदंडों, समानता की व्यापकता तथा न्याय के व्यापक सिद्धांत को लेकर अनेक देशों में शताब्दियों से चर्चा होती रही है। कोई समानता लाने का एक मानदंड स्थापित नहीं कर सका, न ही कोई विद्वान् समानता की एक परिभाषा दे सका। साधारण भाषा में समानता से यह तात्पर्य है कि ईश्वर ने सभी को समान बनाया है, इसलिए समानता व्यक्ति का प्राकृतिक गुण है और सबको आय, व्यवहार आदि सभी मामलों में समान माना जाना चाहिए। राजनीति विज्ञान के अनुसार समानता से तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों का होना है जिनमें सभी लोगों को विकास के समान अवसर हों।

पहले समानता पर विद्वानों द्वारा दिए गए विचारों पर कालक्रमानुसार चर्चा कर लेते हैं। यूनान के दार्शनिक अरस्तू (384 ई.पू. 322 ई.पू.) के अनुसार समानता केवल नागरिकों के बीच होनी चाहिए। समानता सभी के लिए नहीं होती, समान लोगों के लिए होती है। उन्होंने प्राकृतिक क्षमता के आधार पर असमानता को न्यायपूर्ण माना। ब्रिटिश दार्शनिक थॉमस हॉब्स (1588-1679 ई.) ने प्राकृतिक समानता को स्वीकार किया और ब्रिटेन के ही दार्शनिक जॉन लॉक (1632-1704) ने समानता को समान प्राकृतिक अधिकारों के आधार पर साध्य माना।

स्वीडी दार्शनिक जे.जे. रूसो (1712-1778 ई.) ने कहा कि 'कोई संपत्ति पहले किसी एक व्यक्ति की नहीं थी', परंतु किसी संपत्ति को निजी मानने के साथ असमानता की भावना तो उत्पन्न हुई, अपने-परायेपन की भावना भी उत्पन्न हो गई। ईश्वर की एक निधि को उसने अपने कब्ज़े में कर लिया। इससे एक तरफ़ उसका उस संपत्ति के प्रति मोह उत्पन्न हुआ, दूसरी तरफ़ दूसरों पर उसका अधिकार समाप्त हुआ माना गया। वे कहते थे कि कोई व्यक्ति इतना धनी नहीं होना चाहिए कि दूसरों को ख़रीद ही ले और कोई इतना निर्धन नहीं होना चाहिए कि वह स्वयं को बेच दे। इसलिए उन्होंने नागरिकों को विधिक समानता प्रदान करना सभ्य समाज की प्रमुख विशेषता माना। वे समानता के मामले में मनुष्य को पहले वाली प्राकृतिक

अवस्था में लाना चाहते थे। रूसो के इन विचारों का फ्रांस की क्रांति पर भी असर पड़ा। इसी कारण 1789 में फ्रांस की क्रांति के समय यह उद्घोष किया गया कि मानव जन्म से ही स्वतंत्र है और उसे प्रकृति द्वारा समान अधिकार प्रदत्त हैं।

जर्मन दार्शनिक इमैनुअल कांट (1724-1807) ने सभी व्यक्तियों की इच्छाओं को तार्किक मानते हुए सभी को साध्य माना। जर्मनी के ही दार्शनिक कार्ल मार्क्स (1818-1883) ने कहा कि कभी-कभी पहले से चली आ रही कतिपय अवधारणाओं के विरुद्ध अपने विचारों को लेकर जुनून हावी हो जाता है। तब शासक अपनी एक विचारधारा बनाकर उसे समाज पर थोपता है। अमीर लोग शासन की सहायता से असमानता पैदा करते हैं और उसे वैध मनवाते हैं। इस तरह वे समाज का आर्थिक शोषण करते हैं। ऐसी अवस्थाओं में शासक और अमीरों के विचार ही समानता के विरुद्ध असमानता की नई विचारधारा का प्रतिरोपण करते हैं। मार्क्स तो समाज के वर्गीकरण के समर्थक ही नहीं थे। इसलिए उन्होंने वर्गहीन समाज की कल्पना की। उनका मानना था कि शोषण करने वाली व्यवस्था को समाप्त करके ही समानता लाई जा सकती है। जब तक उत्पादन के सभी साधनों पर सभी की पहुँच न हो, तब तक समानता नहीं लाई जा सकती। श्रमिक केवल उत्पादन का साधन नहीं होना चाहिए, उत्पादन में सहयोग करने वाला होने के कारण उसे लोगों की इच्छाओं के पूर्तिकर्ता के रूप में भी मानना चाहिए।

हालाँकि उन्नीसवीं शताब्दी में टॉकविल ने समानता का समर्थन किया, परंतु उनका विचार था कि लोकतंत्र में अति समानता के उन्माद के कारण स्वतंत्रता को ख़तरा हो जाता है तथा स्वतंत्रता की क़ीमत पर समानता की इच्छा एक बहुत अस्वस्थ प्रवृत्ति है। तत्पश्चात्, ब्रिटिश विद्वान् हेराल्ड लॉस्की (1893-1950) ने विचार व्यक्त किए कि विशेषाधिकारों की समाप्ति ही समानता है। उन्होंने विशेषाधिकारों की समाप्ति से समानता का आ जाना माना।

टॉनी ने ब्रिटिश लोगों की इस धारणा को अतार्किक माना कि वे समाज में ऊँचे वर्गों के विशेषाधिकारों को स्वाभाविक मानते हैं और उन्हें स्वीकार करते हैं। जब समाज में ही ऐसी मान्यता होती है तो उनके विशेषाधिकार लम्बे समय तक चलते रहते हैं। उनके विरुद्ध तभी आवाज़ उठती है, जब लोग शिक्षित तथा जागरूक होते हैं और अन्य देशों में समानताओं का अध्ययन करते हैं। इन कारणों से समाज में असमानता शताब्दियों से बनी रही। टॉनी के अनुसार यह असमानता केवल इस कारण से कम है कि पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं, बल्कि इस कारण से अधिक है कि श्रमिक धनी लोगों की प्रशंसा करते हैं, उन द्वारा दिए गए थोड़े से प्रलोभन से खुश हो जाते हैं और अपने शोषण से आँख मूँदे रहते हैं। वे इस बात पर ध्यान नहीं देते कि यदि उन्हें समानता के अधिकार मिलें तो वे भी बराबरी पर आ जाएँ और उनका शोषण हो ही न। इस प्रकार वे असमानता के मूक समर्थक बने रहते हैं और उसे स्वाभाविक माने हुए होते हैं। शिक्षित और जागरूक न होने के कारण वे यह नहीं देख पाते कि उत्पादन में हर व्यक्ति का योगदान होता है, हर व्यक्ति में कुछ न कुछ विशेषता होती है, जिस कारण पूँजीपति की आमदनी बढ़ती है। इसलिए वह केवल श्रमिक ही नहीं रहना

चाहिए, बल्कि पूँजीपति के कारोबार के शासन में उसका भी हाथ होना चाहिए। टॉनी का मानना था कि यदि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है और मानव की क्षमताओं का पूरा लाभ उठाना है तो उसके लिए समानता आवश्यक है, क्योंकि समानता के बिना मनुष्य को अपनी क्षमता का विकास करने की प्रेरणा नहीं मिलती, इसलिए उस दिशा में वह उद्यत नहीं होता। इसके लिए उद्यत न होने का एक कारण यह भी है कि उसे अपनी क्षमताओं के विकास के लिए स्वायत्तता नहीं मिलती। जब क्षमताओं का विकास नहीं होता तो श्रमिक का स्तर वैसे का वैसा बना रहता है, वह कभी ऊपर नहीं उठ सकता तथा पूँजीपति सदा उसका मालिक बना रहता है।

मानवता के गुण श्रमिक में भी होते हैं। इसलिए उसे भी समाज को योगदान देने के अवसर मिलने चाहिए। विलियम मोरिस ने लिखा है कि समानता के लिए व्यक्ति की पहचान उसके पद, जन्म या उसकी संपत्ति से नहीं, उसके मानवीय गुणों से होनी चाहिए। टॉनी भी समतावादी समाज उसे मानते हैं जहाँ कोई अधिकारी, कोई श्रमिक वर्ग न हो। इसलिए सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक व्यवस्थाएँ इस प्रकार हों कि मानव अपने जीवन में कम-से-कम अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति तो कर सके। बार्कर का कहना है कि समानता एक परिवर्तनशील अवधारणा है, जो समय के अनुसार अपना रूप धारण करती है।

इस विवेचन से यह बात सामने आई है कि सामाजिक समानता वह दशा मानी जाती है, जिसमें किसी समाज विशेष में सभी लोगों को समान अधिकार, समान स्वतंत्रताएँ होती हैं और उनके समान स्तर होते हैं। इनमें नागरिक अधिकारों, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रभुत्व, समान अवसर तथा कतिपय सरकारी सुविधाओं और सेवाओं की समान उपलब्धता शामिल है। समानता के अंतर्गत जाति-पाँतिगत सीमाएँ तथा विभेद नहीं होते। साम्यवाद, बहुसंस्कृतिवाद, गणतंत्र, प्रजातंत्र, समाजवाद, सामाजिक प्रजातंत्र में सामाजिक समानता के सिद्धांतों को ही आधार बनाया जाता है। यह समानता समतावाद नहीं है। समानता समाज में व्यक्तियों को समान अधिकार, लाभ अथवा सुविधाएँ देती है, परंतु समतावाद में समाज के अभागे व्यक्तियों की दशा में सुधार करना होता है। समानता की अवधारणा, न्याय, लोकतंत्र, स्वतंत्रता और अधिकार से जुड़ी होती है। यह जन्म, वंश, लिंग, जाति, धर्म के आधार पर अतार्किक समसामयिक असमानताओं को चुनौती देती है और एक सापेक्ष अवधारणा होती है। समानता का सिद्धांत समाजवादी समाज के निर्माण पर आधारित होता है। उदारवादी, मार्क्सवादी तथा नारीवादी विचारधाराओं ने इस अवधारणा को और ऊँचाई प्रदान की। इसी अवधारणा के कारण समान मताधिकार, समान काम के लिए समान वेतन, लिंग के आधार पर भेदभाव न करने के प्रतिमान स्थापित हुए।

असमानता के कारण

प्रायः हर देश स्वतंत्र होने से पहले किसी-न-किसी अन्य देश के अधीन रहा होता है और

शासक देश उसके सब संसाधनों का प्रयोग अपने हित में कर रहा होता है। उसे उस देश के सामाजिक हित की भी कोई चिंता नहीं रही होती। इस तरह परतंत्र देश में न्याय का शासन नहीं होता। समाज के शक्तिशाली वर्ग दुर्बल वर्गो का शोषण करते हैं तथा उन्हें जीवन की सुख-सुविधाओं, धन, संपत्ति आदि से वंचित रखते हैं। ये सुख-सुविधाएँ केवल कुछ लोगों के हाथों में होती है, जिससे समाज में असमानता आ जाती है।

भारत में भी प्रारंभ में राजतंत्र था तथा बाद में विदेशी मुग़ल शासकों और महज़ 75 वर्ष पहले तक अंग्रेज़ों का शासन रहा। उनके समय में समानता के बारे में सोचना और आवाज़ उठाना सोच से परे की बात थी। भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष में ही उलझे रहते थे। इसलिए समानता की आवाज़ के उठने का कोई प्रश्न अथवा अवसर ही न था। परंतु फ्रांस, ब्रिटेन, अमरीका जैसे देश बहुत पहले से स्वतंत्र थे, इसलिए उनके नागरिक अपने अधिकारों की बात निडर होकर उठा सकते थे। इसलिए समानता की अवधारणा सबसे पहले विदेशों में आरंभ हुई।

चूँकि उन देशों में पहले राजतंत्र अथवा तानाशाही जैसे शासन तंत्र थे और शासक तथा प्रभावशाली लोग विशेषाधिकारों का उपभोग कर रहे थे, उन्हें समानता की यह बात हज़म नहीं हुई। इस कारण उन देशों में वर्ग संघर्ष भी आरंभ हो गए तथा केवल समानता को लेकर कलह उत्पन्न हो गए। समानता को लेकर तरह-तरह के प्रश्न उठने लगे। उदाहरण के लिए समानता से क्या तात्पर्य है, यह क्यों दी जाए, यह किसे दी जाए, यह कितनी दी जाए, यह आलसी लोगों को परिश्रमी लोगों का हक़ छीनकर क्यों दी जाए आदि, आदि। इसी के साथ इसके पक्ष या विपक्ष में अनेक दार्शनिकों के मत भी आने लगे तथा सबने समानता का अपने-अपने ढंग से वर्णन किया और उसे अपने-अपने मत से वितरित करने का प्रचार किया। एक भिन्न बात यह भी थी कि हर देश में समानता संबंधी अलग-अलग तरह की परिस्थितियाँ होती हैं, इसलिए इसकी आवश्यकता भी अलग-अलग तरह की होती है। इसलिए एक देश के सामाजिक समानता के आंदोलनों तथा उनके पक्ष में अथवा विपक्ष में प्रतिपादित विचारों को दूसरे देशों में लागू करना संभव नहीं था, जिस कारण इन आंदोलनों तथा विचारों को लेकर वहाँ अलग तरह के संघर्ष आरंभ हो गए। साथ ही अपनी आवश्यकताओं के अनुसार समानता को लेकर भी संघर्ष आरंभ हुए। जो भी हो, जल्दी ही समानता का मुद्दा विश्वव्यापी मुद्दा बन गया और इसे लेकर विभिन्न देशों में आए दिन नए-नए आंदोलन देखे जाने लगे।

समानता लाने के संबंध में नागरिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक, क़ानूनी, नैतिकतागत, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, लैंगिक, जातिगत, नस्लगत, कार्यगत आदि मुख्यबिंदु विचारणीय हैं। नागरिक समानता में राज्य नागरिकों को कुछ अधिकार देते हैं, जिनके अनुसार नागरिकों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए और उनको समान अवसर मिलने चाहिए। लॉस्की के अनुसार अवसर की समानता सबको समान बनाना नहीं है, बल्कि विषमताओं की अतार्किक रूप से व्याप्ति समाप्त करना है। रॉल्स का कहना है कि अवसर की समानता न्यायपूर्ण समाज के बिना संभव नहीं है। उनके अनुसार सभी लोगों को मानव की मूलभूत आवश्यकताओं

के अनुसार संपत्ति का अधिकार और स्वतंत्रता हो। अवसर की समानता मुख्य रूप से सरकारी रोज़गारों या योग्यताओं के प्रदर्श के संबंध में होती है, जिससे व्यक्ति का जीवन-स्तर ऊँचा उठता है। इसमें यह माना जाता है कि जो व्यक्तिगत भिन्नताएँ कौशलों, प्रतिभाओं, श्रम आदि प्राकृतिक अथवा वैयक्तिक गुणों के आधार पर होती हैं, वे तो समर्थन के लायक़ होती हैं, परंतु जाति, रंग, वर्ण, नस्ल, धर्म आदि सामाजिक विभेदों के आधार पर उत्पन्न भिन्नता समर्थनीय नहीं होतीं। इस तरह की भिन्नताएँ केवल सामाजिक पक्षपात हैं।

सामाजिक समानता में जाति, धर्म, वर्ण, अमीर-ग़रीब, ऊँच-नीच, छुआ-छूत आदि की दृष्टि से भेद-भाव न होना माना जाता है और राज्य की ओर से भी इन आधारों पर असमानताओं को स्वीकृति नहीं मिलनी चाहिए। सामाजिक समानता की यह अवधारणा किसी संपूर्ण समूह विशेष के लिए होती है, किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं। यहाँ कुछ समाजजनित असमानताओं का वर्णन करना भी असमीचीन न होगा। उदाहरण के लिए भारत में जाति प्रथा का अभिशाप इसकी एकता को तो खंड-खंड कर ही रहा है, साथ ही समाज में वैमनस्य, ईर्ष्या भावना, हीन भावना, असमानता, अहंकार, मद आदि भी उत्पन्न कर रहा है। धर्म एक है, देश एक है, शहर या गाँव एक है, नस्ल एक है, संस्कृति एक है, वातावरण एक है, आहार एक है, ईश्वर एक है, फिर भी लोगों के मस्तिष्क भिन्न हैं। उस भिन्नता का अज़ीब कारण जाति है। कुछ लोगों ने स्वयं को औरों से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अपने को एक वर्ग विशेष में संगठित कर लिया और सब कुछ एक होते हुए भी वे दूसरों से कहते हैं कि हम तुमसे श्रेष्ठ हैं। वे दूसरी जाति के उन लोगों से भी श्रेष्ठ हैं जो उनसे अधिक कुशल, अधिक योग्य और अधिक ईमानदार है। वे उन्हें अस्पृश्य तक मानते हैं, उन्हें मंदिर, समारोहों आदि सार्वजनिक स्थानों में जाने से मना करते हैं। वे दूसरों को योग्यता के आधार पर दलित नहीं कहते तथा इस श्रेष्ठता का उनके पास कोई मापदंड नहीं, फिर भी वे श्रेष्ठ हैं। बिना किसी आधार वाला इस प्रकार का सामाजिक वर्गीकरण हमेशा इसके सद्भाव को प्रभावित करता आया है और असमानता की विद्रूपता का तो यह बड़ा दृष्टांत है। पिछड़े वर्गों के इलाक़ों में या तो बिजली, पानी, घर, शिक्षा, शौचालय, चिकित्सा आदि की समान सुविधाएँ नहीं दी जातीं या उन्हें सबसे बाद उपलब्ध कराया जाता है या वे समान स्तर की नहीं होतीं या अनियमित होती हैं। इस तरह इन सुविधाओं के मामलों में भी उनके साथ हर तरह का भेद-भाव किया जाता है। उन्हें काम भी वे दिए जाते हैं, जो उनकी दृष्टि में निम्न स्तर के होते हैं और जिनसे उनका जीवन-यापन पर्याप्त रूप से नहीं होता। कभी-कभी तो उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक भी नहीं दिया जाता या दिया ही नहीं जाता। इन सभी असानताओं को दूर करना और शोषित वर्ग को कुछ न्यायसंगत स्तर तक ऊपर उठाना ही समानता की अवधारणा है।

आर्थिक समानता के पक्षपाती यह मानते हैं कि सभी मनुष्यों को समान संपत्ति का हक़ हो। इस प्रकार की समानता सरसरी तौर पर ही असंभव है, क्योंकि हर कार्य के लिए समान पारिश्रमिक नहीं दिया जा सकता। ह्यूम कहते हैं कि यदि सबको समान संपत्ति दे भी दी

जाए, तो भी व्यक्ति के गुण-अवगुण इसे समाप्त कर देंगे और यदि गुणों को रोका जाएगा तो समाज निचले धरातल पर आ जाएगा। आर्थिक समानता से इतना ही तात्पर्य है कि हर व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाने का निर्विघ्न अवसर हो, हर व्यक्ति की रोटी, कपड़ा और मक़ान संबंधी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति हो, योग्यता के आधार पर समान पारिश्रमिक हो तथा जन्म, रंग, वर्ण, जाति, धर्म आदि के आधार पर भेद-भाव न हो, किसी का शोषण न हो तथा हर व्यक्ति को सरकारी अथवा ग़ैर-सरकारी रोज़गार दिलाने के प्रयत्न हों, ताकि हर व्यक्ति अपना विकास कर सके। आर्थिक समानता ऐसा आधार है, जिसके बिना राजनैतिक तथा सामाजिक समानता का आना संभव नहीं। कुछ ऐसी व्यवस्था भी होनी अपेक्षित है कि अपंग, अति वृद्ध, बीमार आदि कुछ अशक्त लोगों को छोड़कर काम न करने वालों को कोई सहायता न मिले; चोरी, डकैती, लूट-पाट, पाकेटमारी, ठगी, कपट, धोख़े आदि अनैतिक तरीक़ों से कमाने वालों को कठोर दंड मिले, जिससे वे औरों की कमाई को न चुराएँ तथा परिश्रम की कमाई करने लगें।

समानता का अर्थ केवल वंचित वर्ग की दशा में सुधार लाना है और उसे आगे बढ़ने लायक़ बनाना है। समानता की यह अवधारणा दो चरणों में पूरी होती है। एक तो व्यक्ति या समाज विशेष को कुछ आर्थिक सहयोग, छूट अथवा सुख-सुविधाएँ प्रदान करके उनका स्तर ऊपर उठाकर और दूसरे उनके लिए आरक्षण की सुविधा उपलब्ध कराकर। समानता से केवल यह तात्पर्य है कि केवल सामाजिक हैसियतों के आधार पर किसी तरह की असमानता न हो। जो लोग अपनी योग्यता और परिश्रम के आधार पर अन्य लोगों से ऊपर उठते हैं, उनके मामले में समानता का आदर्श लागू नहीं होता। यह उनकी प्राकृतिक असमानता हुई। परंतु स्वास्थ्य, शिक्षा अथवा अन्य सरकारी सेवाओं के संबंध में जाति, लिंग, वर्ण, धर्म आदि के आधार पर असमान व्यवहार अन्यायपूर्ण है। यह उनकी सामाजिक असमानता हुई।

डॉर्किन ने कहा है कि संसाधनों की समानता प्रारंभिक स्थिति में समानता है, हर स्थिति में नहीं। यह समानता उन लोगों के लिए है, जो प्राकृतिक रूप से अपंग हों अथवा अन्यथा अयोग्य हों अथवा पिछड़ें हों और जो अन्य व्यक्तियों से प्रतिस्पर्द्धा न कर सकें तथा जिनकी अक्षमताओं की पूर्ति केवल भौतिक चीज़ों की प्रदायगी से न हो सके। डॉर्किन के अनुसार समान परिस्थितियों में समान व्यवहार करना है और असमान परिस्थितियों में असमान व्यवहार करना है।

अमर्त्य सेन कहते हैं कि लोगों की क्षमताओं में वृद्धि करना जीवन की गुणता सुधारना है। उनका कहना है कि एक क्षेत्र की विषमता का प्रभाव दूसरे क्षेत्र पर नहीं पड़ना चाहिए। उदाहरण के लिए किसी के राजनीतिज्ञ न होने पर उसे स्वास्थ्य, शिक्षा, न्याय आदि संबंधी अन्य क्षेत्रों की असमानताएँ न झेलनी पड़ें। इसलिए ग़रीबी व विषमता निवारण के साथ लोगों की क्षमता वृद्धि पर भी बल देना चाहिए।

राजनीतिक क्षेत्र में समानता की कल्पना आधुनिक युग की देन है। राजनैतिक समानता

हर नागरिक को राजनीति में समान सहभागिता देना होता है। प्रारंभ में हर देश में प्रायः राजतंत्र अथवा तानाशाही होने के कारण इस सिद्धांत को समर्थन नहीं दिया गया। लॉक ने केवल धनी लोगों को शासन में प्रतिनिधित्व देने का समर्थन किया तो मिल ने सभी को समान मताधिकार का समर्थन नहीं किया। टॉकविले ने तो यहाँ तक कहा कि समानता की अवधारणा से लोकतंत्र बहुमत का निरंकुश तंत्र बन जाता है। इस तरह राजतंत्र, तानाशाही जैसी सर्वाधिकारवादी शासन व्यवस्था में राजनैतिक समानता की अवधारणा निरर्थक साबित की जाने लगी और विपक्षी दलों को कार्य करने नहीं दिया गया और यह भी ध्यान रखा गया कि शासन लोकतांत्रिक होते हुए भी राजनैतिक समानता न आने पाए। लॉस्की ने माना कि राजनैतिक समानता को तब तक कार्यरूप नहीं दिया जा सकता, जब तक लोगों में आर्थिक समानता न आए, क्योंकि आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति ही किसी प्रणाली में अपने हक़ के लिए लड़ सकता है और उसे प्राप्त कर सकता है। इसलिए मोस्का, पैरेटो, मिशेल आदि कुछ दार्शनिक लोकतांत्रिक राज्य में भी वास्तविक समानता के प्रति संदेहशील रहते हैं। उनका मानना है कि विशाल धन-संपत्ति के मालिक होने और सामर्थ्य होने के बल पर केवल मुट्ठी भर धनाढ्य लोग ही शासन करते हैं। वे मुट्ठी भर लोग चाहे बदलते रहें, परंतु बदले हुए लोग भी धनाढ्य ही होते हैं। इसलिए शासन कभी ग़रीब आदमी या बहुसंख्यक का नहीं होता। पैराटो कहते हैं कि धनाढ्य लोग स्वाभाविक रूप से शेर जैसे साहसी और लोमड़ी जैसे चालाक होते हैं, इसलिए वे ही किसी न किसी तरह से शासन पर कब्ज़ा किए रहते हैं। जो छुट-पुट लोग भिन्न-भिन्न कारणों से शासन में आ जाते हैं, उनका वे वर्चस्व स्थापित नहीं होने देते। इसलिए सामाजिक, वैधानिक और आर्थिक समानता के अभाव में राजनैतिक समानता कभी नहीं आ सकती। व्यक्ति को पहले अपनी ही जगह सुदृढ़ होना होता है, उसके बाद ही वह कहीं और जाकर सुदृढ़ रह सकता है। एक शेर के मुँह से हज़ारों गीदड़ भी आसानी से ग्रास नहीं छीन सकते। कारण यह भी है कि यह असमानता ही धनी लोगों का व्यंजन है, जिसका स्वाद चखकर ही वे विशिष्ट जीवन व्यतीत करते हैं।

राजनैतिक आदर्श के रूप में समानता की अवधारणा वर्ण, लिंग, जाति, वंश, मत आदि उन सभी कारकों पर ज़ोर देती है, जो सामाजिक असमानता के कारण हैं। राजनैतिक क्षेत्र की समानता के लिए इन क़ारकों को नज़रंदाज करके सभी नागरिकों को राजनीति में भाग लेने, कोई राजनीतिक पद प्राप्त करने, मत देने आदि का अधिकार होना चाहिए। इस अवधारणा के पीछे मुख्य निर्देशक पहलू यह है कि मानवता की दृष्टि से मानव समान है और मानव-मानव में किसी भी आधार पर भेद करना नैसर्गिक सिद्धांत के विरुद्ध है तथा हर मानव समान सम्मान पाने का हक़दार है। राजनैतिक समानता की यह अवधारणा व्यक्तिगत आधार पर होती है, सामूहिक आधार पर नहीं। जब शासक वर्ग देश में समानता लाने के प्रयत्न नहीं करते, तो शोषित लोगों के जागृत हो जाने के कारण उसके लिए आंदोलन भी होते देखे गए। जहाँ तक माना जा सकता है, 1215 ई. में इंग्लैंड में समान अधिकारों के लिए किया गया आंदोलन

इस प्रकार का पहला आंदोलन था। उसी के बाद राजा ने लोगों के अधिकारों के लिए मैग्ना कार्टा नामक आदेश पारित किया। फिर 1789 में फ्रांस की क्रांति देखी गई। फ्रांस की देखा-देखी समय-समय पर अन्य देशों में भी समानता के अधिकारों ने मुखर रूप लेना शुरू कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि 1917 में रूस में हुआ साम्यवादी आंदोलन, मज़दूर संघों का 1936 का फ्रांसीसी आंदोलन, विश्व की बेहतर साझेदारी के संबंध में इंडोनेशिया में 1955 में आयोजित एशियाई-अफ्रीकी देशों का बंडुंग सम्मेलन, बीसवीं शताब्दी में दक्षिणी अफ्रीका के अश्वेतों का आंदोलन, बीसवीं शताब्दी में बर्मा के आंदोलन तथा बीसवीं शताब्दी में ही भारत में हुए स्वदेशी, सत्याग्रह, असहयोग आदि आंदोलन इनके उदाहरण हैं।

इन आंदोलनों के नारे ही स्वतंत्रता और समानता थे। इस तरह यह बात देखने में आती है कि प्राचीन युग में बेशक़ समाज का कोई वर्ग अपने शोषण को मूक भाव से सहन करता रहा, परंतु शिक्षा, सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों, सतत राजनैतिक शोषण आदि के साथ-साथ वर्णों के अपने व्यवसाय छोड़ने के कारण जनता का हृदय विद्रोह कर उठा और समानता लाने के ये आदर्श शासक वर्ग की विवशता भी बन गए। कारण जो भी रहे हों, समानता के इस सिद्धांत को आज अनदेखा नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज यह किसी राष्ट्र का अपना मुद्दा नहीं रह गया है, इस पर अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं का दबाव भी रहता है। इसलिए असमानता आज मानवता के प्रति अपराध के रूप में देखी जाती है। बदली हुई इस स्थिति के कारण समानता का मुद्दा एक स्थायी और सर्वस्वीकार्य मुद्दा बन गया है। फलस्वरूप इसे हर देश के संविधान में स्थान दिया गया है।

समानता कैसे लाई जाए?

जिन विषयों को समानता का आधार बनाया जा सकता है, उनमें ऊपर वर्णित विषयों के अलावा समान काम के लिए समान वेतन, उन्नति के समान अवसर, उत्तराधिकार के समान अवसर, मताधिकार की समानता, संसाधनों पर समान अधिकार, लाभांश पर समान अधिकार, न्याय का समान अधिकार, शिक्षा और सरकारी सेवा के क्षेत्रों में दुर्बल वर्गों को आरक्षण, जाति प्रथा, अस्पृश्यता, समान विधि का शासन, सार्वजनिक स्थानों का समान उपयोग आदि को शामिल किया जा सकता है।

यह देखने में आता है कि लोगों में असमानता उनके समाज में व्याप्त परिपाटियों, मान्यताओं, प्रथाओं आदि के कारण है। इन प्रथाओं को समाज के प्रभावी और धनी लोगों का आश्रय होता है, इसलिए समाज इन्हें स्वयं कभी दूर नहीं करेगा। पहले चरण में इनकी समाप्ति के लिए सरकारी प्रयासों की आवश्यकता है और दूसरे चरण में व्यक्ति के अपने प्रयासों की।

यह निर्विवाद है कि व्यक्ति को सरकारी लाभों और अवसरों की समान सुविधा न होने पर वह अन्य लोगों से पिछड़ जाता है। उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं होता। इस पिछड़ेपन के कारण जब उसे सरकारी सेवाओं में समान अवसर नहीं मिलते तो उसकी गरिमा को बहुत

ठेस लगती है। उसका स्वयं पर विश्वास समाप्त हो जाता है और वह हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है। अपने वश से बाहर के कारणों से उपजी हीन भावना किसी निपुण व्यक्ति का मनोबल भी तोड़ देती है। इसलिए समाज का कोई हिस्सा इस पिछड़ेपन से ग्रस्त न बना रहे। जिस प्रकार परिवार में एक व्यक्ति के पिछड़ जाने पर परिवार को भी नुक़सान होता है, उसी प्रकार कुछ लोगों या समाजों के पिछड़ेपन से देश को भी नुक़सान होता है। यदि राष्ट्र यह माने कि यह एक तथ्य है, तो इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि ऐसा न हुआ तो समाज में अपराधवृत्ति बढ़ने का डर रहता है, जो अंततः ऊँचे तबके के विरुद्ध एक प्रतिशोध के रूप में हो सकती है और उससे उच्च वर्ग को नुक़सान होगा। अरस्तू का कहना था कि राज्य में क्रांति का प्रमुख कारण असमानता होती है। इसलिए बजाय इसके कि किसी पिछड़े समाज को लगातार पिछड़ा बनाए रखकर उसके आक्रोश तथा उससे होने वाले नुक़सान को सहा जाए, उसका जीवन भी मानवीय आधार पर जीने लायक़ बना दिया जाए। इससे दोनों वर्गों के दुःख समाप्त हो जाएँगे। यदि सरकारी सेवा प्राप्त करने के लिए शिक्षादि की पर्याप्त सुविधाओं का उपभोग करने वाले और उनसे वंचित रहे छात्रों को एक समान स्तर की परीक्षा पास करने के लिए कहा जाए तो यह नितांत अन्यायपूर्ण होगा। इसलिए या तो ऐसी स्थिति में दुर्बल वर्गों के छात्रों को अंकों में कुछ छूट देने पर और/अथवा उनके लिए कुछ स्थान आरक्षित किए जाने पर व्यवहार में असमानता नहीं कही जा सकती। सही अर्थों में समाज में व्यक्ति की समानता उसकी सम्मानता है।

एक बात यह भी है कि समानता के अधिकार के पक्ष या विपक्ष में चाहे जो कारण रहे हों, परिश्रमी लोग, चाहे वे किसी भी वर्ग के हों, दूसरों के हाथों समानता आने का इंतज़ार नहीं करते। समानता या न्याय प्राप्त करने के लिए सबसे पहले स्वयं सक्षम बनना होता है। समानता का राग वे लोग अधिक अलापते हैं, जो मेहनत नहीं करते। आज देश में जितने लोग हैं, उनसे अधिक काम हैं, बशर्ते कि कोई काम करना चाहे। केवल रोज़गार का रोना रोने से रोज़गार नहीं मिलता, उसके लिए स्वयं को योग्य बनाना होता है तथा औरों से होड़ करनी होती है। परिश्रमी के आगे जात-पाँत का कोई मुद्दा नहीं होता। भारतीय समाज में पहले दलितों और औरतों की बुरी दशा होती थी। बल्कि उच्च वर्ग की औरतों की हालत दलितों से भी बुरी थी। उनमें से जिसने स्वयं को मेहनत के बल पर ऊपर उठा लिया, उनके लिए समानता का मुद्दा अब इतना अहम् नहीं रहा। जो लोग मेहनत नहीं करते, भीख, चोरी, डकैती आदि पर ही निर्भर रहते हैं या मेहनत करके भी उसे मद्यपान, जुआ, नशा, व्यभिचार आदि में बरबाद कर देते हैं, न वे समानता के अधिकारी हैं, न वे समानता का कोई लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि पैसा आ जाने पर वे उसे भी अपने विकारों में ख़र्च करेंगे। कबीर ने कहा है कि पूत कपूत तो का धन संचय, पूत सपूत तो का धन संचय अर्थात् यदि पुत्र कुपुत्र हो तो उसके लिए धन इकट्ठा करने का कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह उसे बरबाद कर देगा और यदि पुत्र सुपुत्र है तो उसके लिए भी धन इकट्ठा करने की कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि वह स्वयं कमा लेगा।

यही बात समानता के मामले में लागू होती है। जिन लोगों में स्वयं में अपना स्तर ऊपर उठाने की भावना नहीं होती, वे बाहरी सहायता से कभी ऊपर नहीं उठते। उन्हें न मेहनत से कमाने की आदत होती है, न वे दूसरों की मेहनत की कमाई का आदर करते हैं। घर में ही समान न्याय नहीं होता, लड़के-लड़कियों में फ़र्क़ किया जाता है, बेटी-बहू में फ़र्क़ किया जाता है और माँ-सास में फ़र्क़ किया जाता है। फिर राष्ट्र स्तर पर समानता की कल्पना कैसे की जा सकती है?

समानता की वर्तमान स्थिति

हालाँकि संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र द्वारा विश्व के सभी लोगों को विधि के समक्ष समान माना गया, फिर भी देशों में तरह-तरह की असमानताएँ व्याप्त हैं। समानता के प्रयासों के बावजूद देशों और समाजों में समानता की बजाय असमानता अधिक देखने में आती है। इसके पीछे मूल कारण धन-संपत्ति के स्रोत और साधन लगातार उन्हीं वर्गों के हाथों में बने रहना है, जिनके हाथों में वे शुरू से थे। इनके बल पर उन्होंने ही हर तरह की प्रगति की और इन्हीं के बल पर वे सदा शासक वर्ग में भी शामिल रहे। शासक वर्ग विधि द्वारा समाज में परिवर्तन लाने का सबसे सशक्त वर्ग होता है, परंतु उसमें भी इन्हीं वर्गों के व्यक्तियों के शामिल होते रहने के कारण समानता की धारणा केवल लीपापोती और दिखावे की वस्तु बनकर रह गई। ऐसी बातों का परिणाम यह होता है कि एक तरफ़ देश में संसार के सबसे धनी लोग रह रहे होते हैं, दूसरी तरफ़ उसी देश में सबसे निर्धन लोग रह रहे होते हैं। उदाहरण के लिए संसार के कतिपय 50 आदमियों की आमदनी अन्य चालीस करोड़ आदमियों से अधिक है। असमानता के बारे में इससे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, परंतु यह स्थिति एक बहुत बड़े विरोधाभास की दिग्दर्शक है। हर व्यक्ति के समानता के सिद्धांत का समर्थक होने के बावजूद संसार में समानता नहीं है। इससे मानवता की यह दुनिया बहुत जटिल बन गई है। कहीं दुनिया में धन के आधार पर असमानता है, कहीं धर्म के आधार पर, कहीं जाति के आधार पर, कहीं वर्ण के आधार पर, कहीं नस्ल के आधार पर और कहीं केवल रंग के आधार पर। इन सबका औचित्य प्रतीत नहीं होता, परंतु कोई कार्य तभी होता है जब नीयत हो, उसमें राजनीति न हो। जब व्यक्ति किसी कार्य का आत्मबोध कर लेता है, तो वह हो जाता है।

सतरहवीं-अठारहवीं शताब्दी में अमरीका और फ्रांस के घोषणा-पत्रों में बेशक व्यक्तियों को नैतिकता और अधिकारों के आधार पर समान माना गया और बेशक उसे वैधानिक समानता के रूप में परिणत कर दिया गया, परंतु निजी संपत्ति एवं पूँजीवादी व्यवस्था बने रहने के कारण इन व्यवस्थाओं का अंकुरण तो हुआ, लेकिन उनका विकास नहीं हो पाया। परिणाम यह हुआ कि कई-कई शताब्दियाँ बीत जाने के बावजूद ये व्यवस्थाएँ अभी भी अपनी शैशव अवस्था में हैं। ऐसे में राज्य स्वयं शोषण का एक तंत्र बन गया और उसमें नीतियाँ ऐसी बनाई जाने

लगीं कि उनसे पूँजीपतियों को लाभ हो और बदले में उनसे राजनैतिक दलों को लाभ हो। इससे राजनैतिक नीतियों के तहत होने वाले लाभों का अमीरों-ग़रीबों के मध्य समान रूप से वितरण नहीं हुआ। इस तरह के शासन तंत्र केवल पारस्परिक स्वार्थ के तंत्र बन गए और इन्होंने वंचितों की समानता की संकल्पना को धराशायी कर दिया। इसलिए जब तक ग़रीब के हाथ में लाठी नहीं आएगी, तब तक भैंस उसकी नहीं होगी। इस संबंध में टॉनी ने तो यहाँ तक कहा है कि समाज में केवल निजी संपत्ति ही नहीं, उसके साथ धर्म और राज्य को भी समाप्त कर देना चाहिए।

समानता लाने के पीछे कुछ और पहलू भी होते हैं, जिनके अभाव में राष्ट्र का समग्र और सर्वांगीण विकास नहीं होता। असमानता के कारण व्यक्ति अपनी शिक्षा का प्रयोग भली-भाँति नहीं कर सकता, अपने अंदर गुणों का विकास नहीं कर सकता अथवा उनका उपयोग नहीं कर सकता, उसमें विनय, ईमानदारी, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, संतोष, प्रेम, धैर्य, परोपकार, मर्यादा, चरित्र, जीवन मूल्यों, देशभक्ति आदि का अभाव आ सकता है, उसमें प्रेम, दान, सेवा, सहयोग का भाव नहीं हो सकता है और वह लोभ, धोखा, कपट, भ्रष्टाचार आदि तरह-तरह के विकारों से ग्रस्त होकर समाज के अन्य लोगों के लिए भी हानिकारक हो सकता है। इतना ही नहीं, इसी असमानता के कारण वह प्रकृति और पर्यावरण को बचाने में भी सहयोग नहीं दे पाता। कहने का तात्पर्य हुआ कि असमानता से उसका अपना जीवन तो असामान्य बनता ही है, उसकी ऐसी अवस्था दूसरों के लिए और समाज तथा देश के लिए भी हितकर नहीं होती। इसलिए यह अपेक्षित है कि मानव-मानव के लिए हर क्षेत्र में कुछ इतनी मात्रा में समानता तो अवश्य हो कि वह दूसरों के लिए ख़तरा न बनते हुए स्वयं भी एक जीने लायक़ जीवन जी सके। मानवता का एक अंग होने और हर व्यक्ति के प्रति मानवीयता होने की दृष्टि से कम-से-कम इतनी व्यवस्था तो होनी ही वांछनीय है।

भारतीय समाज और समानता

भारतीय समाज में समानता लाने के लिए संविधान में सर्वप्रथम इसकी उद्देशिका में ही देश को समाजवादी रूप दिया गया है। इसके शासन का लोकतंत्रात्मक स्वरूप हर व्यक्ति को शासन करने और शासन प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार देता है। भारत का गणराज्य होना भी इस ध्येय का सूचक है, जिससे तात्पर्य है देश का शासन कोई अकेला व्यक्ति नहीं करेगा, बल्कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि करेंगे। इसका राष्ट्रपति भी जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चुना जाएगा। संविधान सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए अंगीकृत किया गया है।

उद्देशिका को सही अर्थों में क्रियान्वित करने और सबको समान अवसर देने के लिए संविधान के भाग 2 में देश में पैदा हुए हर बच्चे को देश की नागरिकता प्रदान की गई है,

जिससे तात्पर्य है वह देश के अन्य लोगों की तरह समान सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विकास और अवसर की समानता का अधिकारी है। संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 14 से 32 तक समान मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिनमें विधि के समक्ष समता; धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध, लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता, अस्पृश्यता और उपाधियों का अंत, वाक्-स्वतंत्रता, प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण, शिक्षा का अधिकार, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण, संपदा का अर्जन, संवैधानिक उपचारों का अधिकार आदि शामिल हैं। इस प्रकार संविधान में हर धर्म, नस्ल, समाज, व्यक्ति के लिए हर प्रकार की स्वतंत्रता और समानता की व्यवस्था है। देश के नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त संविधान में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत भी यही सामाजिक समानता लाने की दिशा में प्रयास हैं। संविधान में हर व्यक्ति को काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने, काम की न्यायसंगत दशाएँ प्राप्त करने, नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता सुनिश्चित करने, अनुसूचित जातियों, जन जातियों और दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि का भी उपबंध है।

राजनैतिक क्षेत्र में हर व्यक्ति को मत देने, चुनावों में उम्मीदवार के रूप में खड़े होने और किसी भी राजनैतिक पद पर आरूढ़ होने का समान अधिकार है। संविधान के अध्याय 2 में संसद के गठन की व्यवस्था है, जिसके अनुसार लोक सभा के सदस्य वयस्क व्यक्तियों द्वारा चुने जाते हैं और अमीर-ग़रीब, हिंदू-मुस्लिम, छोटे-बड़े, शिक्षित-अशिक्षित सबके मत की क़ीमत बराबर होती है। राज्य सभा के सदस्यों को भी विधान सभाओं के चुने गए सदस्य ही चुनते हैं। नगरपालिकाओं, ज़िला परिषदों, पंचायत समितियों, ग्राम पंचायतों के गठन के पीछे भी सामाजिक समानता एक बहुत बड़ा कारक है।

संविधान में सामाजिक समानता संबंधी उपबंधों की रक्षा करने के लिए ज़िला स्तर से लेकर उच्चतम न्यायालय स्तर तक लंबी-चौड़ी न्याय प्रणाली भी है। इसके अतिरिक्त न्यायिक पुनरीक्षण का अधिकार भी सामाजिक समानता की अवधारणा को और अधिक बल देता है।

भाषा के क्षेत्र में भी समता लाने के लिए संविधान में देश की हर भाषा का विकास करने की व्यवस्था है। भाषाओं के समान रूप से विकास के बारे में संविधान के अनुच्छेद 351 में विशेष व्यवस्था है। साथ ही प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध कराने, व्यथाओं के निवारण के लिए अपनी मातृभाषा का प्रयोग करने तथा राज्यों की जनसंख्या के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध है। नौकरियों में नागरिकों को समान अवसर प्रदान करके सामाजिक समानता लाने के भी उपबंध हैं।

शेष अंक 123 में....

❑

Dr. Jyoti Panchal Mistri and Aadarsh Singh

Rights Discourse of LGBTQIA in India through Lens of Western Philosophy

The right that makes us human is right to love. To criminalize the expression of that right is profoundly cruel and inhumane.[1]

I. Introduction

Regulating the matters of sexuality has always been the target of the populace. History is the witness that matters of sexuality has always been of the paramount interest for religion and religious contractors. The institution of religion has always remained impediment in the autonomy of the any individual. Right from the sexuality of women, to interracial marriages to the sexuality amongst men, regulation and prohibition was always justified in the name of command of God. This prohibition often leads to the denial of self-expression. Denial of self-expression is inviting the death itself. The morality of god is not divinity. Identity is equal to divinity. Individual liberty is the sole of the constitution.

This liberty includes right to self-determination, which includes right to express one's sexuality. It creates a distinct identity, where there is a constitutional claim to lead a dignified life. The vision that constitution holds, encapsulates different culture ideology and orientation. State by forcing sanctions based on orientation perpetuates stereotypes. Coercion legitimizing principles has always been tool for majority to escape constitutional responsibility. Constitutional values don't demand conformity, it rather nurture dissent.[2] As Justice Chandrachud rightly points out, dissent is the safety valve of the democracy.[3] This dissent is the sign of evaluation. If we fail to recognize that, we fail to recognize the very aspect of equality. Our constitution is based on the idea of inclusiveness or pluralism. The morality which is mentioned in Art-19(2) is definitely the constitutional morality which is distinct from popular morality or personal morality. The principles of democracy we follow do not call for the enforcement of the *consensus against homosexuality*.[4] Therefore, constitution acts as counter-majoritarian institution to insulate the minorities.

In this paper, I would be taking Hartian and Millian position and would argue that (i) the theory of natural law is based on flawed assumptions of sexuality only of procreative nature (ii) it is not the state's legitimate interest

to enforce morality (iii) legal sanctions should be based on Harm principle (to others and self) and not on morals (iv) there is no concept of preservation of shared morality as such and the very concept of society is of change (v) Devlin, by his claim, rejects the idea of changing society thereby rejecting idea of transformative constitution.

II. The Phantom Of Natural Law

Today, the Natural law posits the most common defense for the differential treatment with Homosexuals[5]. As the name (nature) suggests, the sexual preference of an Individual should be accordance with the boundaries of the Nature. Therefore, as Aquinas points it out, for an individual, the aim, should be that, sex is only for procreative purposes[6].Though he hasn't wrote much about same-sex, but atweel he regard certain type of sex as sin.[7] Natural law theorist argues that, marriage is the most important human good and the it is the only permissible expression of the Sexuality. Therefore, it is embedded in Natural Law that Procreation is the center of the marriage and, it is the only "Natural Fulfillment"[8] Aristotle and Stoics puts it that True law should be consonance with Nature[9]. Plato defines opposite sex as pleasure and Same Sex as Unnatural.[10] The Natural Law Theorist have portrayed *exclusive* interest of a man in man, or a woman in woman as antithetical to laws of nature. They argue that personal integration can only be achieved through marriage. Natural law theorist believe that sodomy is 'illusion' and homosexual involving in such acts doing nothing but masturbation, which is again unnatural. [11] They argue that homosexuality would lead to destruction of traditional families.[12] Professor Finnis argues that those who engages in same-sex, they engage only for pleasure just like a sex worker engages in return for money. [13]

III. What's Natural about Natural Law?

Interestingly, the arguments given by Natural Law theorists have begging the question fallacy and that is, they assume the purpose of sex is only for procreation and noting else. It is obvious that they can defend their argument only by providing the procreative theory of sex. Had it been the case that they have argued heterosexuality in love and mutual support, homosexuality would have met this standard. Natural fulfillment for procreative purpose in exclusive in nature. While there is still dubious position about the *uniform nature* of society itself one cannot ignore the fact that theory is elitist and is enforced upon minorities by dominant class. The characteristic (of sex only about procreation) constructed by religion and flows from the idea of Church. To rebut this argument, let me give one example. A is sterile by birth. B knows this fact and still chooses to marry A. If this theory of procreation is applied here, then this marriage or sex for that matter should be unnatural. By this argument, naturally sterile couple are denigrated. But it is not wrong.[14] Natural

law theorist seem to have waiver here. I would like to add a caveat to the previous example. Suppose A intentionally had a permanent vasectomy and B knowing that still engages in sexual activity, according to natural law there seem to be no unitive relation. But if A later regrets this decision and wanted to undo the vasectomy, but can't due to irrevocable nature, his *sincere* regret would render marriage unitive.[15]

It is indeed that the concept of Sexuality is in itself constructed.[16] It is evident from the proof that in Ancient society, one's gender wasn't important but how one takes role in sexuality was.[17] While in medieval period, "sodomite" was used.[18] It is in modern times, the existence of the term "homosexuality" was used. When the term itself wasn't consistent the claim about oneness of sexuality can't be. Natural Law Theorist have done the compartmentalization of gender while having sex. This theory perpetuates the evil of patriarchy and portrays the society as male dominant society. The claims (substantially one claim) about procreative nature of sex rather for unitive bonding in a marriage renders a means to have pleasure and places women under the mercy of men. That is what exactly the contractors of the religion wanted women to be, as an object or as a toy to gain pleasure. This practice of natural law, not only denies equality to women but also substantially ignores the constitutional claim of homosexuals which is right to dignified life.

IV. The Hart-Devlin Wrangle

Freedom from popular will, freedom to express, right to dignified life, equality in every aspect are the four arteries of the heart of the constitution. At the center, lie individual autonomy, which is its soul. Any legislation should be in light of the objective of the constitution i.e. ***JUSTICE***, ***LIBERTY***, ***EQUALITY*** and ***FRATERNITY***.[19] The goal of the state should be, in pursuit of Justice, protection of Liberty, realisation of Equality, and, assurance of fraternity.[20] These four principles are as close as striking for autonomy as they are far from restricting someone based on their immoral conducts of self expression. These principles, as envisaged in the constitution runs counter to the theory propounded by Lord Devlin. According to him, Society share certain moral values and it is essential for the state to preserve that morality of the society for the existence of the society.[21] And law should be used as weapon to regulate morality in the society.[22] He argues that freedom is not good in itself.[23] A society would achieve more by discipline rather by freedom. Freedom to do immoral acts (engaging in consensual homosexual sex) is worthless and attacks the moral of the society.[24] No good can come from engaging in that evil. And therefore state is the Good Housekeeper seal of approval[25] for the moral conducts of individuals. Enforcement of the morals is the function of the society and it yields good results.[26] Therefore, intention of the regulated subject should have taken into consideration,[27] if it denigrates

the immoral acts of the individuals, then justification need no further reasoning. If any individual wanted to justify his acts as moral, his sincere efforts would render it. Fight, protest, and suffering are the true signs of sincere efforts.[28]

Hart on the other hand dismisses the idea of shared morality. For him, what is moral or immoral is the matter of empirical research. It is not the state's legitimate interest to enforce the morality of majority upon the minorities.[29] (legal moralism)[30] It not only denies them freedom, but is main cause of misery. For him, it is not for the state to punish offenders against a moral code and it should be solely done on "Harm principle"[31]. To exemplify, that state should not punish any rape offender because rape is immoral, but because rape causes harm to the victim. Autonomy of individual is paramount for him and state needs very robust justification to deny it.

V. Dark-Age Dungeons Till 2018.

The fear of the name increases the fear of the thing itself.[32] Well said Prof. Dumbledore. Perhaps that is the reason S-377 uses the term "Carnal intercourse against the order of the nature"[33] without explaining what is carnal intercourse and what is nature of such intercourse. Maybe Lord Macaulay doesn't like the way you have sex? Or maybe it is the will of the majority that one should have sex for only procreative purposes? Or maybe the nature of sex in itself should be for procreative purpose? While every single word of the aforementioned sentences is in doubt I can staunchly write that choosing a partner of my own is a matter of my own choice. Be it man or woman. If anybody's sexual desires stimulate only by turning up of a man (with a man), then it is the nature itself. Therefore, the nature as establish for procreative purposes is the *will* of the dominant call of heterosexuals, and it is their morality which they coercively wanted to prevail above gay men. In that sense homosexuality is not "Unnatural" but the thoughts, stigma related to it is. The implications of Koushal[34] denies a homosexual moral membership in the democracy. This classification provides disadvantages to the already disadvantageous groups and therefore any such classification even with all good intent to make it should be null and void. It is true that court is the guardian of the moral principles of the society, but it should not be the guardian only of the majoritarian interest. This majoritarian interest, renders disgust, contempt, stigmatise, and perpetuates stereotypes against prevailing sexual norms in the society. The argument in Koushal[35] that homosexuality takes away *manliness* from a man, is based on the stereotypical notions of the sexuality and revolving myths around it. While Koushal[36] declares homosexuals as "deviant", is in itself the expression of the public morality of notions of sexuality. A person's expression of sex is his expression of love to someone, he is mentally, emotionally, staunchly, whole-heartedly, fundamentally, and *naturally* connected to. Talking away that very expression

would tantamount to take name, fame, dignity, emotional fulfilment of that person. Is it what the framers wanted? Do they wanted the minority to be under the boots of the majority? I think not. Court is supposed to do justice to the parties and not the promotion of one's interest. A man penetrating with another man is immoral. And snooping him penetrating, is it moral? This hypocrisy created in the name of morality has taken ways dignity and lives of many individuals. Why not give them the peace? Why not let them shine? Does a man's sexual attraction for man renders him incompetent in public sphere? The notions of *Naturalness* hold the idea of static society and is against the idea of transformation. Society would be more preserved by people having right to choose their own partner irrespective of sex. What is more important, a morally upright person or a happy person? The goals of the society of piece, literate, aware can only be achieved when a person is happy. Look beyond sex. Look for love, bond and beauty. Beauty lies in the eyes of the beholder. One just need to see from the perspective of love and bond rather than from utility.

❑

Refrences

1. Justice Leila Seth, "A mother and a judge speaks out on Section 377", The Times of India, 26 January, 2014.
2. *Indian Young Lawyer Association v State of Kerala* [2018] SCC OnLine 1690 (SC).
3. https://timesofindia.indiatimes.com/india/sc-gives-arrested-activists-a-breather-says-dissent-is-safety-valve-of-democracy/articleshow/65595981.cms
4. Ronald Dowrkin, 'Lord Devlin and the enforcement of Morals' [1966] Yale Law Journal.
5. 'Homosexuality' Stanford Encyclopedia of Philosophy [2015]. <https://plato.stanford.edu/entries/homosexuality/> accessed 11 November 2018.
6. Andrew Sullivan, 'Virtually Normal: An Argument about Homosexuality' [1995] New York: Knopf.
7. Robert P. George (ed), *Natural law Liberalism and Morality* (OUP 1996).
8. Robert P. George*, In Defense of Natural Law* (OUP 1999).
9. John Edward King*, Cicero Tusculan Disputations* (Harvard University Press 1966).
10. Plato, *The Symposium* (New York Penguin Books 1981).
11. Martha Nussaum(ed)*, Sex, Preference and Family: Essays on Law and Nature* (OUP 1997).
12. Toni M. Massaro, 'Gay Rights, Thick and Thin*'* [1996] STAN. L. REV. 45.
13. Ibid (n 8).

14. Stephen Macedo, 'Homosexuality and the Conservative Mind' [1995] Georgetown Law Journal.
15. John M. Finnis, *Law, Morality and Sexual Orientation,* (NOTRE DAME L. REV 1994).
16. David M. Halperin, *One Hundred Years of Homosexuality: and other essays on Greek love* (New York: Routledge 1990)
17. Ibid.
18. Ibid.
19. Ibid (n 2).
20. Ibid.
21. Patrick Devlin, *The enforcement of Morals* (Oxford University Press, 1965).
22. Ibid.
23. Ibid.
24. Robert A. Burt 'Moral Offenses and Same Sex Relations: Revisiting The Hart-Devlin Debate' [2004] Faculty Scholarship Series.
25. Ibid.
26. Ibid (n 21).
27. Ibid (n 24).
28. Ibid (n 24).
29. H.L.A. Hart*, Law, Liberty and Morality* (Stanford: Stanford Univ. Press 1963).
30. Joel Feinberg, *Harm to Others, The moral limits of Criminal Law* (Oxford Scholarship Online 2003)
31. Gerald Dworkin, 'Devlin Was Right: Law and the Enforcement of Morality' [1999] 40 Wm. & Mary L. Rev. http://scholarship.law.wm.edu/wmlr/vol40/iss3/11 accessed 11 November 2018.
32. Harry Potter and the Sorcerer's stone.
33. S-377, Indian Penal Code, 1860.
34. *Suresh Kumar Koushal v Naz Foundation* [2014] 1 SCC 1.
35. Ibid.
36. Ibid.

Dr. Rahisha Tarannum

Digital Literacy and Women : Cyber Education

Digital Literacy and Women - 1

With the advent of science and technology, the need for skills have got more importance. Being a literate in the present context, is not enough. Literacy has now changed into digital literacy. Digital literacy is important both for men and women. A skilled man or a skilled woman is of utmost importance in the age of information revolution. In our country, the need to impart digital education to women in particular and men in general is being overlooked. Among 130 crores of people, 61 crores of people are women. They, unlike men, are exploited at every stage. Social life, economic life, political life, moral life, etc., is miserable. They lack everything. But the most important thing that they need is literacy. It is a conspiracy to let them remain backward. Their enlightenment will shake the mindless rituals of the society. They have been taken for granted for a long time. The books of morality are full of pages to give humanitarian approach to the women folk.

Everywhere, there is a hurry and cry that women should be empowered. But when it comes to reality, there is nothing. There, in fact, is barbarity. However, the desire to help them to empower has gained momentum. Now to some extent, the people at the helm of affairs have understood that why it is in the best of interests to give them what for actually they are entitled. Nevertheless, it will take centuries to get a concrete shape. Here, we look at the innovative approach of Facebook with the Government of India to empower the exploited group of our society, women.

Basically, digital literacy has been defined as the ability of individuals and communities to understand and use digital technologies for meaningful actions within life situations. Any individual who can operate computer / laptop / tablet / smart phone / and use other IT related books is being considered as digitally literate. Recently, Facebook launched the 'We Think Digital' programme in partnership with the 'National Commission for Women (NCW) and Cyber Peace Foundation to provide digital literacy training to 100,000 women across states.

The Programme seeks to provide digital literacy training to 100,000 women across seven states in Uttar Pradesh, Assam, West Bengal, Madhya Pradesh,

Gujarat, Jharkhand, and Bihar. Its objective is create digital leadership amongst women and help them use technology to empower, enable them to make smart choices and be secure from Digital risks. Starting from the state of Uttar Pradesh, the program will be expanded to other states including Assam, West Bengal, Madhya Pradesh, Gujarat, Jharkhand, and Bihar

Throughout the year, the programme will focus on digital literacy and citizenship, addressing issues around privacy, safety and misinformation.

The status of digital literacy among women can be understood by this fact that digital gender gap in India is huge. Less than a third of India's total internet users are female that is 29%. Globally in developing countries, the number of women using the internet is 12% less than men. The reasons for low digital literacy amongst women are manifold. The first among them is social conditioning. Women, often perceived use of ICTs meant to empower them because of several obstacles such as lack of self-confidence, low self- esteem, illiteracy, averseness in use of modern technology resulting in low exposure and awareness. The second cause is affordability. Mostly due to poverty and lack of resources, they are unable to afford computer and internet services readily. Given that women on average earn 25% less than men globally, high internet prices discriminate disproportionately against women. The third reason is digital skills and education. Women face several barriers such as lack of competence in use of equipment, lack of training facilities, etc. Yet, the country is making slow progress on providing digital literacy training and Internet access in public institutions at large scale. The fourth cause is grim situation in rural sphere. Women in rural India face multiple issues for achieving digital literacy, such as lack of education, awareness, accessibility and often restrictions because of their gender. The fifth is Digital safety. Mostly, police and courts are still not equipped to handle ICT mediated violence and harassment cases, Legislation to protect the privacy of data and communication is also not implemented in true spirit, bringing an overall aversion from the digital services.

The process of digital literacy and digital inclusion is significant for women because of accession to financial services. Knowledge of and access to these digital services such as mobile, money services can empower women to start small businesses and give them greater control over their money and savings. This has positive implications for their communities as women globally reinvest about 90% of their income into the households. For example, M Pesa mobile money service in Kenya has gained much traction in development circles M_Pesa, as it has lifted 2% of Kenya's urban out of poverty. The results are most compelling for female beneficiaries. Another advantage of this process is increasing activism and participation in campaigns against gender inequality. Women's ability to connect and mobilize *via* social media and the internet is increasingly important to the success of campaigns against gender inequality. For example, Delhi Gang Rape resulted in anti-rape provisions being built into India's Criminal Code. This generated national discussions on violence against

women in Turkey. The me to movement, brought the issue of workplace sexual harassment to the fore globally. Apart from these, access to information, connection and liberation. The internet means access to a wealth of information. Women's ability to communicate with each other freely, regaining a sense of agency in their own education as they teach themselves new skills. For example, it may be considered an appropriate when girls and women ask questions regarding sensitive subjects like reproductive health, sex, religion, politics and social norms.

Internet has a wide range of resources that can provide women with information about their health and wellbeing. Moreover, it gives access to educational resources. The biggest benefits of being digitally literate is that there is a plethora of free learning resources Digital. From YouTube videos to educational apps, one can use these platforms to supplement the education, to learn new skills, etc. Furthermore, digital literacy helps women to fight social discrimination through digital inclusion. A study on mobile phone ownership and usage by women in India, found that cities where women had mobile phones reported lower tolerance for domestic violence and higher criminal autonomy in mobility and economic independence. Last but not the least, it helps to counter Cyber threat. With the advent of laptops, smart phones and Digital learning, there is an urgent need to give girls the tools to be safe in this Digital environment, as new challenges, such as cyber bullying, make it critical to equip girls with the relevant skills and awareness. There is a wide range of avenues that is available if we only implement it in letter and spirit.

❑

Asheesh Yadav

Child Labour in India : Challenges and Prospects for Eradication

Child labour persists as a critical issue in India, threatening the nation's commitment to eradicate it by 2025 under Sustainable Development Goal (SDG) Target 8.7. This paper explores the socio-economic drivers, legal frameworks, and enforcement gaps sustaining child labour, focusing on rural and informal sectors. Using a qualitative approach with secondary data analysis and case studies from Punjab and Tamil Nadu, it pinpoints poverty, inadequate education, and weak policy implementation as key barriers. Findings reveal that legislative efforts falter due to practical shortcomings. Recommendations include enhancing educational access, strengthening enforcement, and promoting sustainable livelihoods to break the cycle of child labour.

Introduction

Picture a child in Jalandhar, Punjab, moulding bricks under a blazing sun, hands caked with clay, while classmates elsewhere scribble lessons on slates. Or a girl in Sivakasi, Tamil Nadu, hunched over a table, labelling firecrackers with fingers too small for the task. These aren't rare snapshots – they're the everyday reality for millions of Indian children trapped in labour despite the country's economic ascent and legal vows. India, now the world's fifth-largest economy by nominal GDP,[1] still grapples with a child labour crisis the International Labour Organization (ILO) estimates contributes heavily to the global tally of 160 million working children.[2] The Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986, overhauled in 2016, bans employment of children under 14 except in family enterprises, yet the 2011 Census counted 10.12 million child labourers aged 5-14 – a figure many believe understates the truth given the informal sector's shadow.[3]

India's commitment to eradicate child labour by 2025, tied to SDG Target 8.7, feels both ambitious and daunting.[4] Why does this blight persist? What keeps children hauling loads instead of books? This paper probes these questions, unpacking the tangle of poverty, education gaps, cultural norms, and legal shortcomings. It aims to map a feasible route to 2025, blending analysis with urgency – for every statistic lies a stolen childhood, a future on

hold.

Literature Review

The scholarship on child labour in India is a mosaic of economic, social, and legal perspectives. Poverty is the bedrock cause, as Basu and Van argue, framing child labour as a grim calculus for desperate families: a child's wage today outweighs uncertain gains from education tomorrow.[5] UNICEF stitches this to schooling deficits, noting that crumbling classrooms nudge kids toward work instead of desks.[6] Bharadwaj et al. complicate the narrative, showing how bans can depress family incomes, perversely driving more children into labour – a policy boomerang.[7]

Geography sharpens the lens. Ray pinpoints rural strongholds like Bihar and Uttar Pradesh, where over 50% of child labourers toil, tethered to agricultural volatility and sparse infrastructure.[8] Gender adds another layer: girls, often invisible in domestic or cottage roles, face double the risk of exploitation, per UNICEF.[9] On the legal front, Weiner skewers India's framework, spotlighting exemptions – like family businesses – that erode protections.[10] Recent critiques, such as the British Safety Council's 2024 report, hammer enforcement as the weak link, with paltry fines and spotty oversight letting violators off the hook.[11]

This paper weaves these strands into a broader tapestry, grounding theory in lived realities. It sidesteps pure number-crunching for a narrative-driven approach, aiming to spotlight both the "why" and the "how" of eradication.

Methodology

This study leans on a qualitative framework, mining secondary sources given the impracticality of fresh fieldwork here. Data draws from government records (e.g., Census 2011, Periodic Labour Force Survey 2019-20),[12] NGO investigations (e.g., Anti-Slavery International),[13]and peer-reviewed journals. Two case studies – Punjab's brick kilns and Tamil Nadu's fireworks units— anchor the discussion, sourced from documented accounts.[14] These sectors epitomize hazardous, informal work, rife with child exploitation.

The approach isn't flawless. The 2011 Census is stale (2021 data remains unreleased), informal labour slips through statistical nets, and primary surveys are absent. Still, cross-referencing diverse sources – official stats with grassroots reports – bolsters credibility. The goal is depth: peeling back layers of systemic failure to expose actionable fissures.

Causes of Child Labour in India

Poverty and Economic Distress

Poverty isn't a side note – it's the pulse. With over 75% of Indians tied

to agriculture,[15] families teeter on the edge, battered by droughts or crop failures. In Punjab's brick kilns, 80% of workers are kids under 14, often migrants shackled to debt bondage – parents earn ¹ 200-300 daily ($2-4 USD), and every child's hands plug a gap.[16] Take monsoon season: when rains faltered in 2019 across Maharashtra, kids flooded fields or factories to keep hunger at bay.[17] It's survival math – short-term crumbs over long-term dreams.

Education Shortfalls

Schools should be the lifeline, but they're fraying. The Right to Education Act (2009) promises free schooling to 14, yet rural classrooms are a gamble: 25% of teachers skip days, buildings crumble, and books are a luxury.[18] Dropouts spike – 32% vanish before Class VIII.[19] Parents, often illiterate themselves (36% of rural adults per 2011 Census),[20] see little upside in education when jobs demand brawn, not brains. In Uttar Pradesh, a boy herding goats earns ¹ 100 daily; a diploma's a distant "maybe."

Cultural Norms and Gender Dynamics

Tradition digs in deep. In Bihar, boys tend livestock while girls cook or sew – work masked as duty.[21] UNICEF flags girls as twice as likely to labour at home, their hours uncounted.[22] Caste and tribe amplify this: Dalit and Adivasi kids dominate mines or quarries, their families boxed out of opportunity.[23] In Rajasthan, girls weave carpets for export, their small fingers prized – a cultural relic turned profit engine.

Market Pull

Demand fuels the fire. Employers crave cheap, agile labour – kids fit the bill. In Sivakasi, Tamil Nadu's fireworks capital, children earn ¹ 50 daily pasting labels, a tenth of adult pay.[24] Subcontracting cloaks this: big firms outsource to shadowy vendors, dodging accountability.[25] In Delhi's garment hubs, kids embroider sequins for global brands, their work buried in supply chain murk.

Legal Framework and Its Limitations

India's laws gleam on paper. The Child Labour Act (1986, amended 2016) bars under-14s from all jobs save family gigs, while adolescents (14-18) dodge hazardous roles.[26] Article 24 of the Constitution bans factory work for kids under 14; the Juvenile Justice Act (2015) and Factories Act (1948) pile on safeguards.[27] Globally, India's ratified ILO Conventions 138 and 182, cementing its 2025 vow.[28]

But the cracks gape. That family business loophole? It's a free pass for home-based toil – beedi-rolling in Tamil Nadu, zari work in Uttar Pradesh.[29] Fines of ¹ 20,000-50,000 ($250-600 USD) are a slap on the wrist for employers banking lakhs.[30] Enforcement's a mirage: 200,000 kids rescued from 2018-2023, yet convictions limp below 10%.[31] Inspectors—understaffed,

overstretched – rarely raid rural dens, and bribes grease the wheels.[32] A 2024 parliamentary note bemoaned definitional chaos – “child” shifts across statutes, muddying prosecution.[33]

Discussion: Prospects for Eradication

Tracking Progress

The arc bends slowly. Child labour dropped from 12.6 million (2001) to 4.35 million (2011),[34] a 65% dip in states like Andhra Pradesh thanks to Mid-Day Meals and Sarva Shiksha Abhiyan.[35] But 2025 looms, and informal sectors – unmapped – likely hide millions more. The Periodic Labour Force Survey (2019-20) hints at stagnation, with rural child work barely budging.[36]

Education: The Game-Changer

Schools are the pivot. Cut teacher absenteeism (25% to 5%), build classrooms – India lags 1.5 million short[37] – and flood rural zones with open educational resources (OERs). Sivakasi’s cracker kids need trade skills, not just chalkboards; apprenticeships could bridge the gap. Cash incentives work – Brazil’s Bolsa Família slashed child labour 14% by paying families to keep kids in class.[38] India’s Direct Benefit Transfers (DBT) in Jharkhand nudge attendance up 10%; scale it nationwide.[39]

Economic Lifelines

Poverty’s the root – rip it out with jobs. MGNREGA offers rural adults 100 workdays at ¹ 200 daily,[40] but delays and low pay hobble it. Double wages to ¹ 400, streamline payouts, and pair with microcredit – Punjab kiln families could swap clay for goats if banks weren’t a maze.[41] Self-help groups in Karnataka lifted 20% of women from debt traps; replicate that.[42]

Enforcement Muscle

Laws need bite. Jack fines to ¹ 5 lakh ($6,000 USD), yank licenses for repeat offenders, and X-ray supply chains – textiles to fireworks.[43] Tech’s an ally: GPS-tag inspections, launch whistleblower apps. NGOs like Bachpan Bachao Andolan freed 90,000 kids since 2001—fund them properly.[44] In Gujarat, drone sweeps cut quarry violations 30% in 2023—roll it out.[45]

Cultural Shifts

Mindsets matter. Bihar’s radio campaigns shamed employers, not parents, dropping child labour 8%.[46] Girls’ education needs a megaphone – link it to dowry busting: “She’ll earn, not drain.” Tribal zones crave bespoke plans – mobile schools, not Delhi’s cookie-cutter fixes. Rajasthan’s carpet weavers turned to co-ops, cutting child roles 15% – mimic that.[47]

Global Lessons

Peek abroad: Vietnam halved child labour in a decade with school stipends and factory raids.[48] Bangladesh's garment sector slashed kid workers 70% via export audits – India's apparel hubs could follow.[49] The trick? Blend carrots (incentives) with sticks (enforcement).

Conclusion

Child labour in India isn't a lone villain it's a hydra of poverty, busted schools, and toothless laws. The 10.12 million kids tallied in 2011 are the visible tip; countless others lurk in the shadows. Progress inches – 4.35 million by 2011 but 2025 demands a leap. India's SDG 8.7 pledge isn't just a deadline; it's a moral line in the sand. Fix education, flood families with options, and hit violators hard. Otherwise, kids will keep stitching footballs instead of kicking them a promise broken, one small pair of hands at a time.

❑

References

1. World Bank. (2023). *World development indicators*. Retrieved from [World Bank website].
2. ILO & UNICEF. (2021). *Child labour: Global estimates 2020, trends and the road forward*. New York: ILO.
3. Government of India. (2011). *Census of India 2011*. Ministry of Home Affairs.
4. United Nations. (2015). *Sustainable Development Goals*. SDG Target 8.7.
5. Basu, K., & Van, P. H. (1998). The economics of child labour. *American Economic Review, 88*(3), 412-427.
6. UNICEF. (2008). *Child labour and education: A global perspective*. United Nations Children's Fund.
7. Bharadwaj, P., Lakdawala, L.K., & Li, N. (2013). Perverse consequences of well-intentioned regulation: Evidence from India's child labour ban. *NBER Working Paper Series*.
8. Ray, R. (2000). Child labour, child schooling, and their interaction with adult labour: Empirical evidence from India. *World Development, 28*(7), 1321-1337.
9. UNICEF. (2008). Ibid.
10. Weiner, M. (1991). *The child and the state in India: Child labour and education policy*. Princeton University Press.
11. British Safety Council. (2024, February 8). *Child labour in India: A persistent problem*. https://www.britsafe.in

12. Government of India. (2020). *Periodic Labour Force Survey 2019-20*. Ministry of Statistics and Programme Implementation.
13. Anti-Slavery International. (2022). *Child labour and slavery in India's brick kilns*. Retrieved from [organization website].
14. British Safety Council. (2024). Ibid.; ILO. (2008). *Education and child labour: A global report*. International Labour Organization.
15. World Bank. (2020). *India agriculture overview*. Retrieved from [World Bank website].
16. Anti-Slavery International. (2022). Ibid.
17. Government of India. (2019). *Drought assessment report*. Ministry of Agriculture.
18. ILO. (2008). Ibid.
19. Government of India. (2020). *Annual report on education*. Ministry of Education.
20. Government of India. (2011). Ibid.
21. UNICEF. (2008). Ibid.
22. Ibid.
23. Ray, R. (2000). Ibid.
24. British Safety Council. (2024). Ibid.
25. Anti-Slavery International. (2022). Ibid.
26. Government of India. (2016). *Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Amendment Act*.
27. Constitution of India, Article 24; Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015; Factories Act, 1948.
28. ILO. (2017). *Ratification of Convention 138 by India*. International Labour Organization.
29. Weiner, M. (1991). Ibid.
30. British Safety Council. (2024). Ibid.
31. Anti-Slavery International. (2022). Ibid.
32. British Safety Council. (2024). Ibid.
33. Ibid.
34. Government of India. (2011). Ibid.
35. ILO & UNICEF. (2021). Ibid.
36. Government of India. (2020). *Periodic Labour Force Survey 2019-20*. Ibid.
37. Government of India. (2020). *Annual report on education*. Ibid.
38. ILO. (2008). Ibid.
39. Government of India. (2023). *DBT impact assessment: Jharkhand pilot*. Ministry of Finance.

40. World Bank. (2020). Ibid.
41. Anti-Slavery International. (2022). Ibid.
42. Government of India. (2022). *Self-help group impact report*. Ministry of Rural Development.
43. British Safety Council. (2024). Ibid.
44. Anti-Slavery International. (2022). Ibid.
45. Government of Gujarat. (2023). *Drone surveillance pilot report*. Department of Labour.
46. UNICEF. (2008). Ibid.
47. Government of Rajasthan. (2022). *Carpet weaving cooperative evaluation*. Department of Industries.
48. ILO. (2015). *Vietnam child labour reduction report*. International Labour Organization.
49. Bangladesh Garment Manufacturers and Exporters Association. (2020). *Child labour audit report*.